घेरों को घेर दो उन्मुक्त हो ही जाओगे

एषणा सबसे बड़ा घेरा है। एषणाओं में वित्तेषणा, पुत्तेषणा, यशेषणा के त्रि हैं। त्रि एषणाओं के घेरे को घेरना उन्मुक्ति का पहला चरण है। वर्तमान धर्म जो वास्तव में सम्प्रदाय मात्र रह गए हैं मानव की बुद्धि पर इस्पात कटीले शिकंजे हैं। जिसमें मानव अस्तित्व कसमसा कराह रहा है। इन धर्म सम्प्रदायों से भी संकीर्ण कठोर शिकंजे हैं राजनैतिक दलों के। वर्तमान प्रजातन्त्र व्यवस्था में दबाव समूहों के जिनका आदमी अंग होता है की लघु-लघु संकरी कोठरियां भी आदमी को उन्मुक्ति की सांस नहीं लेनें दे रहीं हैं।

इतने घेरों से हटकर स्वयं ओढ़े घेरे भी हैं आदमी के लिए। इन्हें आदमी बड़े चाव से ओढ़ता है। इन घेरों को घेरने का साधन है आदमी का बड़ा होते जाना। ज्ञान वह साधन है जो समस्त घेरों से मानव को उन्मुक्त करता है।

ज्ञान-यात्रा का एक विकास है "घेरों को घेर दो उन्मुक्त हो ही जाओगे"।

डॉ. त्रिलोकीनाथ क्षत्रिय
पी.एच.डी.(वेद), एम.ए.(आठ विषय), सत्यार्थ शास्त्री,
बी.ई., एल.एल.बी., डी.एच.बी., पी.जी.डी.एच.ई.,
एम.आई.ई., आर.एम.पी. (10752)
बी 512, सड़क–4, स्मृतिनगर, भिलाई नगर,
पिन–490020, (म.प्र.) – (0788) 359789

अध्यात्म

१. 'छोटे-छोटे घेरे

हिन्दू मुसलमान आदि कौन? मनुष्य ज्ञान के लिए है या ज्ञान मनुष्य के लिए है? इस प्रश्न का उत्तर इस नीतिवाक्य में है कि "जीने के लिए खाओ खाने के लिए मत जीओ" **ज्ञान के लिए मनुष्य का रह जाना अध्यात्म से भटकाव है, ज्ञान मनुष्य के लिए है, मनुष्य ज्ञान के लिए नहीं है।** इंसान का ज्ञान के लिए रह जाना उसे हिन्दू बना देता है, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, जैन, बना देता है। और मानव का हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आदि हो जाना अध्यात्म की हत्या है, मानव की हत्या है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आदि कौन हैं? ये वे पशु हैं जो अतीत में हुए महापुरुषों के तप किए गए सत् असत् कर्मों की हड्डियों को सत् समझकर चूंसने में ही अपने को श्रेष्ठ समझते हैं।

जब ज्ञान के लिए आदमी रह जाता है तो वह ज्ञान का अन्धानुकरण करता है। वह ज्ञान के लिए शस्त्र उठा लेता है। अपने नाखून बढ़ा लेता है। इसी अन्धानुकरण के कारण **कुरानवादी** ने कहा *"एक हाथ में कुरान और दूसरे हाथ में तलवार"* **वेदवादी** ने कहा *"आगे–आगे चार वेद चलेंगे और पीछे–पीछे सुसज्जित धनुष।"* **ग्रन्थ साहबवादी** ने कहा *"दोनों हाथ से ग्रन्थ साहब सम्हालेंगे लेकिन कमर में पैनी कृपाण होगी।"* **बाईबल वादी** बोला *"शरीर पर बाईबिल और क्रास धारण करूंगा, लेकिन कन्धे पर बन्दूक रखूंगा। गिरजे में प्रार्थना करूंगा, लेकिन धर्मयुद्ध के लिए बारूद सूखी रखूंगा।"* [१]

अध्यात्म तलवार, बन्दूक आदि के शरणागत हो गया तो वह अध्यात्म कैसा है? ज्ञान वह है जो मुक्त करता है। ज्ञान मुक्ति का साधन है। मुक्ति प्राप्ति पर यह साधन भी छूट जाता है। इस साधन से बन्ध जाने पर मुक्ति असम्भव है। मुक्ति समष्टि का अनुभव है और इस समष्टि का जिसे अनुभव हो गया है उसके लिए नैतिक मूल्यों के अनुसार आचरण करना उतना ही सहज, सरल और स्वाभाविक हो जाता है जितना सांस लेना। [२]

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि होना बुरा नहीं है; पर हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, आदि ही रह जाना बहुत बुरा है। हिन्दू, मुसलमान, ईसाई होना यदि समष्टि के अनुभव में पहला कदम है तो वह सराहनीय है। ये तथाकथित धर्म समय के साथ चलने में समर्थ नहीं रह गए हैं, ये बूढ़े हो गए हैं, मर गए हैं। आज इन्हें जला देने की आवश्यकता है। इसलिए आदर के साथ इनको जला दो, नफरत के साथ नहीं। जैसे हमारे पिताजी मर जाते हैं तो उनकी लाश को आदर के साथ जलाते हैं। [३]

"तटस्थता बुद्धि की आत्मा है।" इस तटस्थता को धूमिल करते हैं, बिखरित करते हैं– सम्प्रदाय, संस्थान। मन्दिर, मस्जिद, गिरजे,

गुरुद्वारे कालिख हैं जो तटस्थता पर थोप दी गई हैं। इन मन्दिरों, मस्जिदों, गिरजों, गुरुद्वारों से जो हवाएं बहती हैं उनमें शान्त, सौम्य, अध्यात्म की सुवास नहीं हैं, वरन् आवेगपूर्ण उफनती अनाध्यात्म की दुर्गन्ध है। इससे मानव मात्र को बचाना आवश्यक है। एक प्रेम के लिए अनेक घृणाएं फैलाना यदि धर्म है तो अधर्म क्या है? अन्धा व्यक्ति गन्दली आंख वाले व्यक्ति से कहीं श्रेष्ठ है। अन्धा व्यक्ति सभी कुछ को कुछ नहीं देखता है, जब कि गन्दली आंख वाला सभी कुछ गन्दला देखता है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजों, गुरुद्वारों से समाज में बहता तथाकथित धर्म एक "बुद्धि महारोग" है। जिससे मानवता को बचाना ही होगा। समाज में हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई का पैदा होना इस महारोग की जड़ है। समाज में बच्चे पैदा होने चाहिएं। हिन्दू बच्चे, मुसलमान बच्चे, ईसाई बच्चे—आदि आदि नहीं। जो बहुत बड़ा दुर्भाग्य इस जगत में घटा है वह यह है कि हम अपने धर्म को जन्म से तय करते हैं। इससे बड़ी कोई दुर्भाग्य की घटना पृथ्वी पर नहीं हुई। क्योंकि इससे सिर्फ उपद्रव होता है और कुछ भी नहीं होता। दुनियां से धर्म के नष्ट होने के बुनियादी कारणों में एक यह है कि हम धर्म को जन्म से जोड़े हैं। एक बार मैं एक बड़े ही विचित्र आदमी से मिला वह अपना यह दावा अभिव्यक्त कर रहा था कि वह पांच हजार साल से वही है, और आने वाले पांच हजार साल तक वही रहेगा। वह कह रहा था कि मैं अमर हूं, कभी नहीं मर सकता। लोग उससे बड़े प्रभावित हुए।

"महात्माजी आपका शुभ नाम?" —मैंने पूछा।

"बुद्धु महाराज"— उसने कहा।

"आपके पिताजी का नाम?" —मेरा दूसरा प्रश्न था।

"बुद्धु महाराज" वह बोला।

"आपके बेटे का नाम ?".....'बुद्धुमहाराज"। और मैं समझ गया कि पांच हजार साल क्या करोड़ों साल तक यह आदमी जिन्दा रहा है और जिन्दा रहेगा। पर यथार्थता तो यह है कि करोड़ों वर्ष पूर्व के पहले बुद्धु महाराज ने लगातार मुर्दो को जन्म दिया है। हमें सोचना है कि क्या हमें विश्व को मुर्दो का जमघट बनाना है? बुद्धु महाराजों से भरना है इसे? बुद्धु महाराज का नाम हिन्दू, मुसमान, सिक्ख, ईसाई जैन आदि रख देने से क्या सत्य बदल जाएगा? नहीं सत्य वही रहेगा। हमें जीवित होना होगा, हमें नए सिरे से पैदा होना है और नए आदमी को पैदा करना है।

हमारे बाप—दादे बेशक हमें सत्य बता सकते हैं, दिखा सकते हैं। पर वे हमारे सत्य, हमारे जीवन निर्धारित नहीं कर सकते। उन सत्यों का विकास करने का हमें पूरा हक है और इस हक को कुंठित करने का अधिकार किसी मन्दिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे को नहीं है।

कोई आदमी नास्तिकता को कांससली (विचार पूर्वक) चुनता है, उसे चुनना पड़ता है। वह कहता है —नहीं है ईश्वर, तो यह उसका चुनाव होता है। और जो आदमी कहता है कि ईश्वर है, यह उसके बापदादों का चुनाव है इसलिए नास्तिक के सामने आस्तिक हार जाता है। उसकी विरासत चल अचल सम्पत्ति की होती है। उसे सम्पत्ति तक ही सीमित रखना होगा। विचारों की विरासत की परम्पराएं खत्म करनी होंगी। किसी भी मानव को वेद, कुरान, बाईबिल, पिट्टक, ग्रन्थसाहब विरासत में नहीं दिए जाने चाहिए। किन्हीं भी परिस्थितियों में लादे गए सत्यों के भयानक बोझों से आदमी को बचाना होगा, कि वह उन्मुक्ति की सांस ले सके।

"अस्थाई का स्थाई के लिए समर्पण ही अध्यात्म है।" मानवता के कुछ मूल्यों के आधार पर काल विशेष में प्रचलित सम्प्रदायों से अधिक स्थाई है— मानवता। स्थाई एवं अस्थाई का एक सुन्दर उदाहरण है भूख एवं भोजन। भूख स्थाई है, भोजन ग्रहण करना अस्थाई। भूख के लिए भोजन होना चाहिए, भोजन के लिए भूख नहीं। भोजन के लिए भूख का अनाध्यात्म शारीरिक, मानसिक, विकृतियों को उत्पन्न करता है। धर्म के क्षेत्र में हम बहुत ही पिछड़े हैं। हम ज्ञान भूख के अनुसार पुस्तकें नहीं पढ़ते हैं। वरन् पुस्तकों के आधार पर ज्ञान भूख गढ़ते हैं। जब हम ज्ञान भूख के स्थाइत्व को सीमित तथा कल यहीं न रह जाने वाले संकीर्ण विचारों के भोजन के लिए ही रह जाने देते हैं तो हमारा स्वस्थ जीवन अपनी सम्पूर्ण ताजगी खो देता है। जीवन की ताजगी खोना, सुवास खोना ही हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, जैन, बौद्ध आदि हो जाना है।

"कल त्यागने पर आज मिलता है। कितनी दु:खद स्थिति है अध्यात्म की कि हम कल त्यागने को तैयार नहीं हैं और आज की हममें तीव्र तमन्ना है। परिणामत: हमारा आज कल से विकृत है। इस विकृति के नष्टीकरण का एक ही पथ है—हमें इन तथाकथित धर्मो का उदात्तीकरण करना होगा। इन्हें एक परिष्कृत "एका" के अन्तर्गत लाना होगा। ये सम्प्रदाय मंजिल तलाशने में पथ भूल चुके हैं। 'उदात्त एका' में हमें पथ को ही मंजिल करना होगा। मंजिल के सफर के शाश्वत सत्यों का उद्घोष करना होगा।

२.धर्म की दुकानें

दुकानदारी और अध्यात्म में बहुत अन्तर है। आज दुकानदारी और अध्यात्म एक हो गए हैं। दूसरे की आवश्यकता का फायदा उठाना, भांति—भांति की सजावटों, शोर—शराबों द्वारा लोगों को आकर्षित कर बढिया उद्घोषणाओं के साथ घटिया माल मंहगे दामों में बेच देना दुकानदारी है। आज मन्दिर, मस्जिद, गिरजे, गुरुद्वारे भी सज—धज में एक दूसरे से होड़ कर रहे हैं। कराहती मानवता के सीने पर बड़े—बड़े भोज किए जाते हैं। अध्यात्मिक कहे जाने वाले फंक्शनों में बाम्बे पार्टियां बुलाई जाती हैं। करोड़ों जग—जग बल्बों द्वारा भवन सजाएं जाते हैं। इस शोर शराबे में खोटा अध्यात्म सस्ते मनोरंजन के रूप में बेचकर पैसा कमाया जाता है। खोटे अध्यात्म को और चमकाया जाता है। इस अन्तहीन और धार्मिक उत्सवों का अन्त करना होगा।

आज देश की संस्कृति का ऐक्य विध्वस्त है। नए—नए मतवाद के दुष्ट बीजाणुओं ने हमारी स्वाभाविक धर्म बुद्धि को क्लिष्ट और नीरस कर रखा है। विपरीत मुखी आकर्षण आज हम लोगों को हमारी चिरंतन प्रतिष्ठा भूमि से किसी अन्ध रसातल की ओर खींचकर लिए

जा रहा है। [४]

'चिर शान्ति के अभय निर्झर' की ओर प्यासे मानव को ले जाने वाला अध्यात्म इन संकीर्ण गलियों की भूल भुलैया में भटक गया है। हिन्दुत्व, मुसलमानियत, ईसाइयत, आदि–आदि सरल रैखिक प्रगति पथ नहीं है वरन् वृत्ताकार घेरे हैं। इन पर मानव कितना भी क्यों न चल लें, वहीं का वहीं घूमता रहता है। चिर शान्ति के अक्षय निर्झर से उतना ही दूर रहता है। धर्म की सबसे अधिक दुकानें तीर्थ स्थानों पर हैं। यहां एक छोटे–से–छोटा तिलक धारी भी इस घिनौने धन्धे में बुरी तरह लगा हुआ है। इस घिनौने धन्धे का अध्यात्म से बड़ी दूर तक का कोई नाता नहीं है। तमाम भारतवर्ष में मिलाकर १ हजार ५ सौ से ऊपर प्रसिद्ध तीर्थ हैं। जिनमें अनगिनत मन्दिर और बेशुमार देवता बैठे–बैठे यात्रियों की प्रतीक्षा करते रहते हैं। उन तीर्थों पर प्रतिवर्ष लगभग पांच करोड़ यात्री पहुंचते हैं और डेढ़ अरब से ऊपर धन जनता का इस मद में खर्च होता है। जिसमें से ९० करोड़ के लगभग मन्दिरों, महन्तों, और पुजारियों के पेट में आ जाता है।

धर्म के नाम पर चलते इस घिनौने धन्धे को बन्द करना होगा। इन धर्म व्यवसाइयों को सामाजिक घृणा देनी होगी। इनके प्रति घोर उपेक्षा का व्यवहार करना होगा, अध्यात्म तक मानव को लाने के लिए ये कदम आवश्यक हैं।

जो बात नेताजी सुभाषचंद्र बोस ने पन्द्रह वर्ष की उम्र में समझ ली थी वह कई–कई वृद्ध पुजारियों, पादरियों, मौलवियों को भी समझ नहीं आती है। पन्द्रह वर्ष की उम्र में सुभाष ने मां को लिखा–"मुझे आशा है इस बार पूजा बड़ी धूमधाम से मनाई जाएगी। पर मां क्या इस दिखावे, इस उत्सव की कोई आवश्यकता है? जिसे हम पाना चाहते हैं उसका सच्चे हृदय और पूरी इमानदारी से आह्वान करें इससे और अधिक क्या चाहिए? जब भक्ति और प्रेम चन्दन और फूलों का स्थान ले लेते हैं तब हमारी पूजा दुनियां की सबसे महत्वपूर्ण चीज हो जाती है।" दिखावा और भक्ति एक दूसरे के विरोधी हैं।

दिखावे की टीमटाम झीमझाम से भक्ति को मुक्त करना ही होगा। दिखावे के समस्त उपकरण तोड़नें होंगे, छोड़नें होंगे कि इन्सान भक्ति पर उतर सके ठहर सके।

यहां वहां से संग्रहीत असम्बन्ध श्रृंखलाहीन विचार कुछ कुछ इकट्ठे होकर सम्प्रदाय का रूप ग्रहण कर लेते हैं। इन संप्रदायों से बन्धे लोगों को इन विचारों का पूर्ण पाचन नहीं होता। और पाचन के स्थान पर ये लोग मानसिक अजीर्ण तथा अव्यवस्था के रूप में इनको फैलाते हैं।

अधकचरे विचारों को जब अधकचरे मानस ग्रहण करते हैं तो एक दलदली संस्कृति का निर्माण होता है। जिसमें यथार्थ में इन्सान नहीं जी सकते, पर इन्साननुमा शूकर खुशियां मनाते हैं। एक दूसरे पर कीचड़ उड़ाते हैं।

ये पण्डित, ये मौलवी, ये पादरी गीता पुराणों के, कुरान के, बाईबिल के लाउड़स्पीकर हैं। धर्मग्रन्थों के बातों की तोता–रट हैं इनके प्रवचन भाषण। इनके द्वारा प्राप्त ज्ञान इनके ही आचरण में नहीं उतरा है। अन्य की तो बात ही दूर है। ऐसा ज्ञान प्राप्त करना जिसे हम आचरण में प्रकट नहीं कर सकते, अन्त में आध्यात्मिक कब्ज और मानसिक अजीर्ण पैदा करता है। [५]

मन्दिर, मस्जिद, गिरजों का कोई वजूद राम, कृष्ण, महावीर, गौतम, हजरत मुहम्मद, ईसा आदि से पूर्व नहीं था। इन महापुरुषों के चेलों, मोटी भाषा में कहा जाए तो चमचों नें इन्हें गढ़ा है। मन्दिरों, मस्जिदों आदि का गढ़न उन लोगों नें किया है जो महापुरुष नहीं हो सकते थे। इन मन्दिरों, मस्जिदों आदि की सत्य सीमा वे महापुरुष हैं जिनके नाम पर ये गढ़े गए हैं। इनसे किसी नए सत्य का उद्‌भव होना असम्भव है।

निर्धारित लक्ष्यों तक
पहुंचाई गई सड़कों!
तुम्हें बगावत करने का कोई हक नहीं है।
तुम्हारा कोई वजूद ही कहां था? [६]

सम्प्रदाय इन्कार को नकारते हैं। कुरान से इन्कार मुसलमानियत खोना है। बाईबिल से इन्कार ईसाईयत खोना है। "विधि निषेधों" की मृत लाशों के नियम जीवित नकारों से महत्वपूर्ण माने जाते हैं। ब्रूनो को जला दिया जाता है। सुकरात को जहर दिया जाता है। गैलीलियो को जेल में डाल दिया जाता है। दयानन्द को कांच पिलाया जाता है। धर्म का रूढीवादी अन्धा इतिहास बड़ा घिनौना है। धर्मशास्त्रों के संकीर्ण बन्धनों का नकार उदात्त विचारों के प्रसार करने का प्रयास जिस किसी नें भी किया उसका घोर विरोध पण्डितों, मौलवियों, पादरियों नें किया। उसे जलवा दिया, मरवा दिया।

कमजोर व्यक्ति सभा समाजों के सहारे जिन्दा रहता है। निर्बलता छिपाने का साधन बेईमानी छिपाने का तरीका हो गया है आज का धर्म। आज जरूरत है स्वस्थ तन, स्वस्थ मन, स्वस्थ मानस युक्त बलवानों की। सभा समाजों और सम्प्रदायों पर भरोसा मत करो। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह स्वयं अपने भीतर से बलवान हो। [७]

मन्दिर, मस्जिद, गिरजे की शरण में जाना अपनी स्वाधीनता की हत्या करने के सिवाय और क्या है? ओ रे मानव! ये सब मतमतान्तर तेरी अपनी रचना हैं। तुम अपने आप को ईश्वर, ईसा, मुहम्मद, बुद्ध, कृष्ण अथवा संसार के किसी अन्य महात्मा के अधीन क्यों समझते हो? तुम सब के सब स्वाधीन हो। [८]

३."सीमित कुछ असीमित सर्व"

कुरान, बाईबिल, पुराण तो छोटे छोटे घाट हैं। इन घाटों की सीढ़ीयां हैं वे उपदेश जो मन्दिर, मस्जिद आदि से प्रसारित होते हैं। इन

घाटों पर ठहर जाने वाले उन लोगों से भी गए बीते हैं जो घाट–घाट घूमते हैं। घाट–घाट घूमना भी सत्य पाना नहीं है, अमर होना नहीं है। अमरता के सफर में निकले हुए यात्रिक रास्ते के किनारे कंकड़ बीनने में समय नहीं खोते हैं, घाट–घाट नहीं ठहरते हैं।

बस!

अब मैं अपनी जीर्ण नौका को घाट-घाट पर नहीं ले जाऊंगा।
लहरों पर खेलने मचलने की बेला समाप्त हो गई।
अब अमरता के अथाह सागर में लीन होना है। [९]

अध्यात्म वह है नित नूतन, चिर नवीन है। पुराने घिसे जीर्ण तारों से अध्यात्म राग नहीं बज सकता। सम्प्रदाय तारों को नवीन होने से रोकते हैं। साम्प्रदाई अपने मानस तारों को सीमितता की जंग लगने देते हैं। शब्दों का दुहराव, तिहराव अध्यात्म नहीं है, धर्म नहीं है। अनुभूति को नित नया आयाम देना अध्यात्म है। सीमितता से अनन्तता की छलांग अपने को सीमितों में बान्ध कर नहीं लगाई जा सकती। दिव्य स्वर परम नूतन तार दे सकते हैं।

"सितार की पुरानी तारों को एक-एक कर के उतार दे,
उस पर नई तार चढ़ा ले।" [१०]

मनुष्य में प्रतिक्षण कुछ नया पैदा होता है। प्रतिक्षण कुछ पुराना मरता है। यथार्थ में कुछ का प्रतिक्षण मरना ही प्रतिक्षण कुछ के पैदा होने का कारण है। मन्दिर, मस्जिद, गिरजे में जाकर माथा टेकने वालों में कुछ सही कुछ गलत पैदा होकर रह जाता है। यह पैदा होकर बस वहीं रह जाना नए को पैदा होने से रोकता है। पैदा होकर बस वही रह जाने की दीवार दूसरे के पावों पर सर रखकर पार नहीं की जा सकती। अपने ही कन्धों पर सर संभालकर पार की जाती है। सिर की सर्वोत्तम जगह कोई चौखट, कोई द्वार, कोई मजार, कोई चरण नहीं है। वरन् अपने ही सबल पुष्ट कन्धे हैं। निर्बल कन्धेवाले अपना सर भी नहीं संभाल पाते। गलतों की ठोकरें खाते हैं। मानव "कुछ" पर रुक जाने के लिए नहीं पैदा हुआ है। "सर्व" तक पहुंचना तुम्हारा गन्तव्य है। सर्व तक पहुंचने के लिए प्रतिक्षण और नए को पैदा होने देना है। नए को मर जाने नहीं देना।

अज्ञान से ज्ञान की ओर कदम मानव न्यूनतम समयांश में रखता है। जो पल पल सावधान नहीं है उसे सत्य के दाने नहीं मिलते। सत्य का एक दाना अमाप खुशियां दे देता है। मानव गद्‌गद् हो उठता है, झूमझूम उठता है, उसकी आंखों में खुशि के अश्रु छलक आते हैं बरबस अवश ही।

एक अनन्त गणित श्रृंखला को लें... १÷२ + १÷४ + १÷८ + १÷१६.....१ इसका योग क्या होगा? सामान्य कुछ सोचा उत्तर है एक से कम। एक से कितना कम? कोई स्पष्टत: नहीं बता सकता। यही अस्पष्टता इस उत्तर को असत्य सिद्ध कर रही है। अस्पष्टता सत्य नहीं होती। इसी का सामान्य असोचा उत्तर है "अनन्त"। क्या यह सत्य है? बस यहीं मैं अपने अब तक के अज्ञान पर सिहर सिहर उठा, कांप कांप उठा। सहजता अध्यात्म है, असहजता अनाध्यात्म। सहज उत्तर उपरोक्त अनन्त गणित श्रृंखला के योग का 'अनन्त' है। और यह सत्य भी है। एक पलांश में मेरा छत्तीस वर्षीय अज्ञान भस्म हो गया। मैं सत्य के आलोक में पहुंच गया। यथार्थ में शून्य और एक के मध्य एक भी स्थिति मानना मानसिक दिवालियापन है। इस दिवालिएपन की देन सबको मिली हुई है। शून्य और एक के मध्य जो अनन्त स्थितियां जो हम मानते हैं वे कई कई "यथार्थ–एकों" का योग है। एक का आधा कभी हो ही नहीं सकता। यह केवल कल्पना है या केवल व्यवहार के लिए है, सत्य नहीं है। **शून्य और अस्तित्व की सीमारेखा है "यथार्थ–एक"।** दोनों (शून्य और एक) यथार्थ के मध्य लेशमात्र भी अन्तर नहीं है। "यथार्थ–एक" अविभाज्य है। विभाज्य 'एक' एक नहीं है, एक की गलत मान्यता है। वह एक से बहुत–बहुत अधिक है। अनन्त तक विभाजनीय अनन्त है। [११]

४."अन्धपट्टीयां"

लकीर पीटने वालों नें जिस पल नया कदम बढ़ाया एक नया सूर्य गढ़ लिया। [१२] इन नए सूर्यो को न गढ़ने देना ही सम्प्रदायों का काम है। और तो और स्वयं नए सूर्य न गढ़ सकने की क्षमता के साथ–साथ ये सम्प्रदाय नए सूर्य गढ़नेवालों पर भयानक कुठाराघात करते हैं, बौखला उठते हैं। इतिहास ऐसे उदाहरणों से भरा पडा है।

अरस्तू ने ऐनैक्सगोरस (५००–४२८ ई.पू.) के बारे में कहां "अन्धो में अकेला एनेक्सेगोरस ही देखने वाला था"। उस द्रष्टा **एनैक्सेगोरस** ने कहा कि "सूर्य जलता हुआ पत्थर है, और चन्द्रमा मिट्टी का बना है।" उस पर अन्धों ने 'देव निन्दा' का आरोप लगाया। उसे दोषी ठहराया। उसके लिए मृत्यु दण्ड निर्धारित किया। साम्प्रदाई अन्धों की बस्ती आंख वालों की आंखो को एक शारीरिक रोग समझती है।

अपने क्षेत्र साम्प्रदाई चीखता है। सभी चीजों का माप बाइबिल, कुरान, पिट्टक, पुराण है। इनके बाहर उसकी आंखे बन्द हैं। और तो और अपने आप के बारे में भी उसकी आंखे बन्द हैं। **प्रोटैगोरस** कहता है "मनुष्य सभी चीजों का माप है; जो कुछ है उसके आस्तित्व के सम्बन्ध में और जो नहीं है उसके अभाव के सम्बन्ध में वही निश्चय करता है।" यह निश्चय क्षमता खो देना गंवा देना ही हिन्दु, मुसलमान आदि हो जाना है। अवनति के गर्त में गिरकर अपने आप को उन्नति के शिखर पर समझना इससे बड़ी अवनति और क्या हो सकती है?

आन्तरिक जागृत आवाज के मालिक **सुकरात** पर ६० वर्ष के उम्र में आरोप लगाए गए कि "वह राष्ट्र के देवताओं को नहीं मानता, वह नए देवताओं में विश्वास करता है, उसने एथेन्स के युवकों का चरित्र बिगाड़ दिया है। ५०१ एथेन्स वासियों ने मुकदमा सुना। सुकरात को जुबान बन्द रखने, एथेंस छोड़ने या मृत्यु वरने के दण्ड दिए गए। जीवित सुकरात ने मुर्दे न्यायाधीशों से कहा–

"निणर्य करने वालों! तुम्हें भी मृत्यु को साहस के साथ स्वीकार करना चाहिए कि एक भले पुरुष पर न जीवन में और न मृत्यु के बाद ही कोई आपत्ति आ सकती है। मैं न आरोप लगाने वालों से रुष्ट हूं, न दोषी ठहराने वालों पर कुपित। अब समय आ गया है कि हम लोग यहां से चल दें। मैं मरने के लिए और तुम जीने के लिए, परन्तु परमात्मा ही जानता है मरने और जीने में कौन श्रेष्ठ है।"

मुर्दे व्यक्ति मरकर भी मुर्दे रहते हैं और जीवित मरकर भी जीवित। सुकरात की मृत्यु उतनी ही शानदार रही जितना उसका जीवन रहा।

५०१ न्यायाधीश भी मर गए हैं, उन्होंने मरण से मरण का पथ चुना। सुकरात नें जीवन से जीवन का पथ चुना। सुकरात ने जीते जी मरना अस्वीकार किया वह चौबीस–सौ वर्षों के मर जाने पर भी आज जिन्दा है। मरण से मरण का रास्ता चुनना ही मुसलमान, हिन्दु, ईसाई आदि होना है। इन साम्प्रदाई कारणों को आज तोड़ना ही होगा। अन्यथा इतिहास के कंलक दुहरते ही रहेंगे।

"जो पुरुष घोड़े पर सवार होकर कहीं जाता है, वह उस समय के लिए छः टांगों का स्वामी हो जाता है। और अपनी दो टांगो को थकाए बिना अपना काम कर लेता है।" [१३] काश! मानव सम्प्रदायों के घोड़ों को अपने लिए उपयोगित करना सीखता? पर वह तो अपनी टांगों को ही इन घोड़ों के लिए उपयोगी बना रहा है! संसार के महापुरुषों के कन्धों पर सवार होकर न्यूटन ने दूर दूर तक देखना सीखा था। आज मानव इन महापुरुषों के पैरों के बीच सर झुका अपनी टांगो को भी बेकार कर रहा है। इन साम्प्रदायी अन्धों ने अपनी आंखों पर सम्प्रदाय प्रवर्तक महापुरुषों की पट्टियां बान्ध रखी हैं और इन महापुरुषों को ज्ञान का प्रकाश रोकने वाली दीवारें बना कर बहुत ऊंचा उठा दिया है। इन दीवारों को गिराए बिना, इन पट्टियों को फाड़े बिना किसी का शाश्वत सत्य तक पहुंच पाना भी सम्भव नहीं है।

जड़ परम्पराएं, स्थिर रूढ़ियां चैतन्य मानव पर हावी हो जाती हैं तो वह भी जड़ और पत्थर हो जाता है। कुछ क्षेत्रों में तो मानव पत्थरों से भी गया बीता हो जाता है और पत्थरों को पूजना शुरु कर देता है। चैतन्यता की इससे बड़ी हत्या और क्या हो सकती है? यदि हमें भविष्य को नए उदात्त आयाम देने हैं, सुख की लहलहाती फसल रोपनी है; तो पुरानी बासी परम्पराओं को उखाड़ फेकना होगा और नव अध्यात्म की विवेकपूर्ण यात्राओं के लिए भूमि तैयार करनी होगी। "विवेकरूपी स्वाभाविक प्रकाश समाज की विषम और निष्प्राण परम्पराओं के कारण मन्द पड़ जाता है"– **गाडविन**। ये विषम तथा निष्प्राण परम्पराएं ध्वस्त करनी होंगी, ताकि विवेक रूपी स्वाभाविक प्रकाश से मानव अन्तस् जगमगा सके।

"वे व्यक्ति तेजी से आगे बढ़ते हैं जो अकेले चलते हैं"– **नेपोलियन**। अकेले चलना ही तो चलना है। भीड़ में शामिल हो जाना चलना ही कहां है? वहां तो एक दिशा में धकेला जाना है। भीड़ तो भेड़ों के समूह को कहते हैं। कलाकार, साधक, चिन्तक अकेला ही होता है। "मैं अपने ही पूर्ण की अर्चना करता हूं" **इमर्सन**। सम्प्रदाय प्रतिमा को लील जाते हैं, घेर देते हैं, कुण्ठित कर देते हैं। आसपास की खुली हवाओं को भीतर की और न आने देना ही इनका काम है। जो प्रतिमा इनसे छूट जाती है, साम्प्रदाई आवरण तोड़ देती है वही अध यात्म पा सकती है। "कलाकारों साधकों के लिए सत्य उसी सीमा तक सार्थक है जिस सीमा तक वे उसे जीवन में उतार सकें और जिस सीमा तक वे उसके द्वारा दृष्टि, जीवन, आदर्श और यथार्थ अस्तित्व को एक जीवन रहित परिधान का रूप दे सके। सत्य के लिए जीना, अन्दर की आवाज के अनुसार आचरण करना ही सभी सच्चे कलाकारों साधकों और अपने लक्ष्य की मादकता में डूबे हुए विद्रोहियों की उत्कण्ठा रही है।" [१४]

ये हिन्दु, ये मुसलमान, ये सिक्ख, ये ईसाई आदि सब पीड़ित हैं, संकीर्ण व्यवस्थाओं के निर्बल शिखर हैं, कोल्हू के बैल की तरह पट्टी बन्धी आंखों से बिना देखे गोल–गोल घूमने वाले, अन्धन्तम लोग के निवासी, कीचड़ी अस्तित्व, महान दया के पात्र हैं। ये अध्यात्मिक अपाहिज हैं। इन्हें उदात्त विचार देनें होगें, इनकी आंख पट्टियां फाड़नी होंगी, प्रकाश लोक में इन्हें लाना होगा, इनका कीचड़ धोना होगा, इनकी अध्यात्मिक अपाहिजता दूर करनी होगी, इन्हें बुद्धि देनी होगी, इनमें विवेक तथा परिष्कृति जागृत करनी होगी ताकि ये आदतन न भटकें। भीड़ के साथ तालाब के कीचड़ों में न धंसें। एक प्रेम के लिए अनेक घृणाओं की आग में न जलें। इन्हें उबारना होगा, इन्हें व्यक्तित्व देना होगा, चैतन्यता देनी होगी। मानना की भूल भुलैया से इन्हें जानना के विस्तृत पथ पर लाना होगा। अन्यथा हमारी मानवता अर्चना हमेशा अधूरी रहेगी, अपूर्ण रहेगी।

५."छांव जो धूप है"

मानव मात्र के लिए छांव देने की बड़ी–बड़ी बातें करते हैं ये सम्प्रदाय। ये बातें केवल थोथी बातें हैं। हर शहर में किसी इस कोने में, कहीं उस कोने में ऐसी बस्तियां होती हैं जो शहरी जगमग से दूर अन्धेरा जिए जाती हैं। यहां अपाहिज, लूले, लंगड़े, अन्धे, कोढ़ी आदि अपने से कम ऊंचाई की टूटी–फूटी झोपड़ियों में रहते हैं। मन्दिर, मसजिद, गिरजे में पलते पादरियों, पण्डितों मौलवियों में से कोई कभी नहीं पहुंचता है इन बस्तियों में। महाकरुणा, अहिंसा, दया, प्रेम पर बड़े–बड़े भाषण जगमगाते साफ सुथरे टाऊन हालों, सम्प्रदायभवनों में होते हैं। भाषणों की महाकरुणा, अहिंसा, दया, प्रेम सभी उन्हीं भव्य भवनों में तड़प–तड़प कर बिना सांस लिए मर जाते हैं। कभी कोई–कोई जगद्गुरु शंकराचार्य, महानबी, पोलपाल, आंसुओं से गीली गलीच इन बास्तियों में झाकने भी नहीं आते। ये लघु बस्तियां अश्रुतर इन धर्म के ठेकदारों को कुछ नहीं दे सकती हैं। जगमगाती बस्तियां इन्हें धन देती हैं, मठ देती है, मन्दिर देती हैं, सोने चांदी के भगवान दिया करती हैं। बड़ी–बड़ी, बहुत थोथी बातें मानवता की हुआ करती हैं सम्प्रदायों में।

यहां दरख्तों के साए में धूप लगती है,
चलो यहां से चलें और उम्र भर के लिए। [१५]

जब समाज में किसी नए विचार का प्रादुर्भाव होता है तो उसका जनक कोई समूह या संगठन नहीं होता, व्यक्ति ही होता है। संगठन और संस्था बाद में बनते हैं [१६] व्यक्ति के नव विचारों पर आधारित ये ही संस्थाएं कालांतर में व्यक्ति को छोटा कर देने का कार्य करने लगती हैं। नए विचारों का भयानक विरोध करने लगती हैं। विवेकवादी पाश्चात्य दार्शनिक **स्पिनोजा** को यहूदी पुरोहित मण्डल ने २४ वर्ष की उम्र में यहूदी जाति से निकाल दिया। जाति–बहिष्कार के अवसर पर मण्डलाधीशों के निर्णय के अन्तिम शब्द थे–

"इस आदेश के द्वारा सब यहूदियों को सचेत किया जाता है कि कोई भी उसके साथ न बोले, न उससे पत्र व्यवहार करे, कोई भी उसकी सहायता न करे, न कोई उसके साथ एक मकान में रहे, कोई भी चार हाथों से कम उसके निकट न आए, और कोई भी उसके किसी लेख को, जिसे उसने लिखवाया हो या आप लिखा हो, न पढ़े।"

यहूदी जाति आप ही बहिष्कृत थी– स्पिनोजा धर्म कठमुल्लों के द्वारा उससे भी बहिष्कृत कर दिया गया। सम्प्रदाय का इतना घिनौना स्वरूप कई बार इतिहास में दुहर चुका है। इस घिनौने स्वरूप को धर्म से अलग करना ही होगा और यदि इसे अलग करने को कोई सम्प्रदाय तैयार नहीं है तो उन सम्प्रदायों को ही खत्म करना होगा।

"मनुष्य को आप सीधा खड़ा होना चाहिए, न कि यह कि दूसरे उसे सहारा देकर सीधा खड़ा रखें।"– **मार्क्स आरेलियस** के इस कथन की सच्चाई को ईमानदारी पूर्वक स्वीकारना ही होगा। दूसरों द्वारा प्रदत्त हर सहारा मनुष्य के लिए छोटा ही रहता है। साम्प्रदाई भावना की जड़ अपने पैरों पर खड़ा न हो पाना है। जो व्यक्ति बौना है वह ऊंचाईयों से बहुत जल्दी प्रभावित होता है। वह ऊंचाईयों के गीत गाता है प्रशस्ति स्वरों में। यदि उसके साथ कुछ और बौने मिल गए तो सम्प्रदाय का गठन हो जाता है। **हाब्स** कहता है "छोटे–छोटे लोग ही 'महाकाय' का अह्वान करते हैं।" यदि सम्प्रदाय तोड़ने हैं तो मानव को अपना बौनापन छोड़ना होगा, ऊंचाईयां धारण करनी होंगी।

उस दुकान की स्थिति क्या होगी जिसमें एक ही नाप के जूते बिकते हों? बच्चों, बड़ों, बूढ़ों, औरतों, मर्दों सबको एक ही नाप के जूते नहीं पहनाए जा सकते। एक ही नाप के जूते या टोपी या बर्तन या वस्त्र की दुकानें नहीं चल सकती यह समान्य मनुष्य भी जानता है। लेकिन सम्प्रदायों की दुकानें सामान्य दूकानों से भी गई बीती हैं और साम्प्रदायी व्यक्ति सामान्य व्यक्ति से भी निम्न है। ये दुकानें एक ही नाप में सबको फिट करने की कोशिश में कुछ मस्तिकों को छोटा कुछ मस्तिकों को बड़ा करने का असम्भव कार्य करने का प्रयास कर रही हैं। तंग मिस–फिट विचार कपड़ों में जकड़े ये सम्प्रदाई कितने भद्दे दिखते हैं यह इनके अतिरिक्त हर तटस्थ व्यक्ति जानता है। क्या इस भद्देपन को खत्म नहीं किया जा सकता? क्या इन्सान के लिए इतना मूर्ख होना आवश्यक है? नहीं! इन्सान के लिए मूर्ख होना, भद्दा होना आवश्यक नहीं है। इन्सान में श्रेष्ठता के गुण हैं। धूर्त बौनों का आस्तित्व धीरे–धीरे समाप्त हो रहा है। ये दुकानें अब कुछ अन्य मापों की वस्तुएं भी रखने लगी हैं। इन्हें यदि चलना है तो कल पूरी तरह बदलना ही होगा।

धर्म क्षेत्र में हमनें पूर्ण विचार करने की क्षमता खो दी है। **पेट्रिक** का कथन है कि "पूर्ण विचार करने की कला का नाम दर्शन है।" दर्शन का आधार जब खो जाता है तभी धर्म सम्प्रदाय बन जाता है। इसको सूत्र रूप में इस प्रकार अभिव्यक्त कर सकते हैं।

शाश्वत धर्म – दर्शन = सम्प्रदाय।

पूर्णता एक होती है, अपूर्णाताएं अनेक। अपूर्ण धर्म अनेक हैं, अपूर्ण धर्म ही सम्प्रदाय है। सम्प्रदाय छोटे–छोटे से घेरे हैं। इन घेरों को घेरते जाना इनसे बड़ा हो जाना है। **घेरों को घेर दो उन्मुक्त हो ही जाओगे।** अनुभूति, मानस, तथा कर्म की सम्पूर्णता से सना जीवन ही सच्चा अध्यात्म है। तीनों पहेलुओं में एक भी पहेलू का त्याग चाहे वह आंशीक ही क्यों न हो व्यक्ति को अधूरा बना देता है। अधूरे व्यक्ति संकीर्ण दीवारों के गिरजे, मन्दिर बनाते हैं। पूरे व्यक्ति दीवारें तोड़ते हैं। व्यापक अर्थों में सोचते हैं। मानव मात्र के लिए।

"ऊपर आकाश और नीचे धरती माता यही सबसे बड़ा गिरजाघर है।" [१७]

धर्म के नाम पर समाज में फैले आडंबरों पर **कार्ल मार्क्स** प्रहार करते लिखता है "धर्म तंग किए गए प्राणियों का क्रन्दन है, निष्ठुर विश्व का हृदय है, नितान्त अध्यात्महीन परिस्थितियों की आत्मा है, यह गरीबों की अफीम है। ईश्वर का विचार अधम सभ्यता की आधारशिला है।" सम्प्रदाय को यदि धर्म का पर्यायवाची शब्द मान लिया जाए तो मार्क्स के कथन में कुछ भी असत्य नहीं है। धर्म का अर्थ है अर्ध से एक होना या अपूर्ण से पूर्ण होना। जबकि सम्प्रदाय का अर्थ है अपूर्णता की एक सीमा पर रुक जाना, अपूर्णता पर रुक कर भी अपने को पूर्ण समझने की मानसिक स्थिति ही हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि होना है। इसी स्थिति को साम्यवाद बड़े कठोर शब्दों में झुठलता है। साम्यवाद "एक सबके लिए सब एक के लिए" के रूप में उच्च अध्यात्म की प्रस्थापना भी करता है।

सीमितताओं के अन्धेरे ने आंखों में पड़कर असीमितता के प्रकाश को जब ढंक लिया तब एक कुएं के मेंढक का जन्म हुआ। मेंढक ने हिन्दुत्व का अन्धेरा धारण किया हिन्दु बना, मुसलमानियत का अन्धेरा ओढ़ा मुसलमान बना, ईसाइयत का अन्धेरा ओढ़ा ईसाई बना। जात भले ही अलग अलग हो, नाम अलग–अलग हो पर प्रकार में सभी मेंढक हैं। कुएं भले ही अलग–अलग हो। इन मेंढकों के अपने–अपने टर्राहटी शोर का फैलाव बढ़ता ही चला जा रहा है। नए देवता, नए भगवान पैदा हो रहे हैं जो और छोटे कुओं के मेंढक गढ़ रहे हैं। कितना कितना छोटा हो सकता है आदमी? कितना कितना गंदला हो सकता है आदमी? इसकी निम्नता की आखीर सीमा क्या है? ये टके टके के भगवान, मूर्तियों से झड़ती राख, संतोषी मां, भोग के लिए हारमोन्स सा उपयोग में लाया जाने वाला योग। आने वाली पीढ़ी के लिए हम क्या छोड़ जाएंगे? अपनी अज्ञानता की घिनौनी तस्वीर? कहीं हम इतने न गिर जाएं कि आने वाली पीढ़ी हमें मानव कहने के काबिल भी न समझे। धर्म की पुरानी दुकानों में कुछ सुधार हो चला था, पुरोहिती आतंक की भीषणता कुछ कम हुई थी, कुछ आशा बन्ध चली थी भविष्य के लिए;

पर अज्ञान के फैलते घिनौने तरीकों से वह आशा धूमिल हो चली है। "पोथी–पण्डितों" से भी गए गुजरे लोग आज के भगवानों को पूज रहे हैं, योग को भोग का यथार्थ समझ रहे हैं। उनकी बुद्धि मूर्तियों से झड़ती तथाकथित राख फांक रही है और आज के भगवानों ने अपना आज इन अन्ध भक्तों के कारण भौतिक समृद्धि से इतना भर लिया है कि उसके मद में वे अनाप–शनाप बक रहे हैं। अनाप–शनाप वे छप रहे हैं। कल फैल जाने वाले घनघोर अन्धेरे से ये भगवान, ये योगी, ये बाबा लोग घोर तटस्थ हैं। ये लोग "नष्टलोग" हैं।

"हमारी संस्कृत भाषा में नष्ट मनुष्य दुष्ट मनुष्य से बदतर माना जाता है। दुष्ट वह है, जिसकी दुष्टता का निराकरण किया जा सकता है। जो सुष्ट बन सकता है। लेकिन नष्ट वह कहलाता है जो खो गया है, जिसका कोई ठौर–ठिकाना नहीं रह गया है। [१८] नष्ट योगी, नष्ट भगवान, नष्ट बाबाओं की हमें उतनी चिन्ता नहीं है। पर इनके नष्टतर, नष्टतम भक्तों की स्थिति देख मानव भविष्य के सपने में कई–कई कांटे चुभ जाते हैं।

ये वाद, ये सम्प्रदाय क्रान्ति की उन्मुक्ति की बड़ी–बड़ी बातें करते हैं; पर कालांतर में अपने–अपने झण्डे बचाने के लिए सिकुड़ जाते हैं, सिमट जाते हैं। एक वादी यदि मानवता का झण्डा उठा ले, मानवता की तस्वीर के आगे अगरबत्ती धूप जलाना शुरु कर दे, उस पर फूल चढ़ाता रहे, तो एक दिन इतना सिकुड़ जाएगा कि मानवता के झण्डे की रक्षा के लिए दानव हो जाएगा। जब समझ का सूरज डूब जाता है, मानववाद के झण्डे तले खेमे गाड़ लेता है।

क्रांतिकारी ने कहा– "हमें उत्पादक–परिश्रम की प्रतिष्ठा कायम करनी है।" उसने अपने झण्डे पर हंसिए हथौड़े का निशान रखा। लेकिन हंसिया हथौड़ा तलवार का मुहताज हो गया। जो हथौड़ा उत्पादन का साधन था, वह प्रहार का अस्त्र बन गया। किसी स्टालिनवादी का हथौड़ा ट्रॉटस्की का सिर फोड़ने के काम आया। हम गांधीवादी अगर गांधी का वाद बना लेंगे तो चरखे के तकुए से अहिंसा की दुहाई देकर एक दूसरे को झोंकेंगे। इसलिए बड़े विचित्र दृष्य कभी–कभी देखने में आते हैं। "अहिंसा परमो धर्म:" ये अक्षर ठोस सोने के बने हैं इसलिए उनका रक्षण एक प्रहरी हाथ में नंगी तलवार लेकर करता है। यदि हम मनुष्य को उबारना चाहते हैं, तो उसे सम्प्रदाय और धर्म की गुलामी से उबारना होगा। वाद के शिकंजो से मुक्त करना होगा। वाद सम्प्रदाय और धर्म मनुष्य के व्यक्तित्व को बुरी तरह तरोड़–मरोड़ डालते हैं। [१९]

इन वादों, सम्प्रदायों, घेरों के गठन, रक्षण, उद्देश्य को केवल दो पंक्तियों में अभिव्यक्त करते हैं **दुष्यंत कुमार**-

कैसी मशालें लेके चले तीरगी में आप?
जो रोशनी थी वो भी सलामत नहीं रही।

खुद की तो और बात है, महापुरुषों की रोशनी भी जिनके नाम पर ये सम्प्रदाय गढ़ते हैं सलामत नहीं रख पाते हैं ये हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि। दुहरा अन्धेरा फैलाने का हक किसी को नहीं दिया जा सकता, पर हिन्दु, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई होने की स्वतन्त्रता दी जाती है, क्या इसलिए कि वे आदमी न हो सके?

६.बातों की भीड़

सम्प्रदाय का प्रारम्भ एक संगठन से होता है। ये संगठन जब बड़े हो जाते है...या पुराने पड़ जाते हैं तब उनमें एक बोदापन आ जाता है। "संगठन जब पूर्णत: या अंशत: महन्त वाद के रूप में सीमित हो जाता है तब यह बोदा पन ही काम करता है और मानव जीवन की कोई भी गति अविरुद्ध हो जाती है" [२०] आज सभी सम्प्रदाय बोदेपन की स्थिति में पहुंच गए हैं इनमें से धर्म की स्फूर्तिदायक भावनाएं शनै:शनै: कूच कर गई हैं। मठाधीश शंकराचार्यो ने आदि शंकराचार्य के अद्धैत सिद्धान्त को जहां का तहां रोक रखा है.. पोप पालों ने बाइबिल को घेर रखा है कि उसमें कोई संशोधन न हो सके.. मौलवी कुरान को बदलने के खिलाफ हैं..।

धर्म सिद्धान्त पोथी पण्डितों की जड़ता से टकरा–टकरा घिस गए हैं। नई दृष्टि के नशे वाले लोग जब इन पोथी पण्डितों में धर्म की सांस भरते हैं, तो ये पोथी पण्डित उन पर गन्दगी तथा कीचड़ की उलटियां करते हैं। अरस्तु पर आरोप लगा उसे एथेन्स से निकाल देते है, कांट को स्वाभाविक धर्म लिखने पर चेतावनी देते है।

"टूट रहा देश टूटती जाती आस्थाएं।
तूफानों में अन्धे नाविक खेते नौकाएं।
बातों की बस भीड़ कि सारी जगह घिर गई है।।" [२१]

दिन प्रतिदिन मानव धर्म ढ़कोसलों के कारण अध्यात्म से भी दूर होता चला जा रहा है। अध्यात्म के प्रति इन्सान की बची–खुची आस्थाएं भी टूट रहीं हैं। भाषण, प्रवचन, भजन, कीर्तन सब का शोर बहुत है। इसमें आदमी कहीं भी सुनाई नहीं देता। मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों की सारी की सारी धरती पर कर्मो का नहीं बातों का कब्जा है। तर्क के तूफानों का मुकाबला अन्धे मठाधीश चौधरी आदि क्यों कर कर सकेंगे? फूटी आंखोंवाले ये नाविक बन्धी हुई नाव को खे–खेकर नए घाट ले जाने की कोशिश कर रहे हैं। और नाव रूढ़ीयों, रस्मों, परम्पराओं के ही घाट पर खड़ी है।

सम्प्रदायों की घुमावदार सीढ़ीयां आदमी चढ़ते–चढ़ते थककर चूर हो जाता है। उसे पता ही नहीं चलता कि आखिर में कहां पहुंचना है? जब मंजिल के बहुत पास पहुंचता है तो...

घुमावदार सीढ़ीयां चढ़ता रहा
कभी सीढ़ीयां ऊपर जाती हैं कभी नीचे
और जब सीढ़ीयां खत्म हुई तो पता चला

वहीं पहुंचे जहां से चले थे। [२२]

यह नियति बड़ी भयानक है, बड़ी उबाऊ है, बड़ी कीचड़ी है। समझ नहीं आता कि घर बाजार काम–काज में अच्छा–भला आदमी; आंखवाला, समझवाला आदमी इन सम्प्रदाय भवनों में प्रवेश करते ही अन्धा क्यों हो जाता है? "आत्महना लोगों के लिए असूर्य नाम का एक अन्धा लोक है।" [२३] वह अन्धा लोक ये मन्दिर, मस्जिद, गिरजे आदि ही तो हैं जहां आदमी भटकता चला जाता है लेकिन अपने को भटकता नहीं समझता है।

दूसरों के चरित्र के बल पर अपने शब्दों की कीमत बढ़ाने का घिनौना एवं नीच प्रयास ही पण्डित, मौलवी, पादरी होना है। कितने पण्डित, कितने मौलवी, कितने पादरी ऐसे हैं जो अपने शब्दों को अपने चरित्र की कीमत, अपने चरित्र की सबलता दे सकते हों? एक मठाधीश शंकराचार्य 'सब कुछ ब्रह्म है' मान्यता का प्रचार करता हुआ, अपने तन को पवित्र मानता हुआ आदि शंकराचार्य की खड़ाऊं पर लोगों को पुष्पहार चढ़ाने को कहता है। इस शंकराचार्य का त्रिविध अज्ञान ब्रह्म के बारे में, उसके अपने तन के बारे में, खड़ाऊं के बारे में; लाऊड–स्पीकर पर चीखता है और अपार भीड़ वाह–वाह करती है। ज्ञान की इस पीड़ा का, ज्ञान के इस दाह का इलाज कौन करेगा? प्रमुख होने की दौड़ में 'सम्प्रदाय प्रमुख' प्रामाणिकता के पथ से भटकते जा रहे हैं। काश! ये अन्ध–प्रज्ञ समझ सकते कि प्रमुख होने की तुलना में प्रमाणित होना कहीं बेहतर है।

७.''महापुरुषों की लाशों के संग्रहालय''

धार्मिक महापुरुषों में ऐतिहासिक महापुरुषों के जीवन चरित्रों को भरपूर विकृत किया जाता है सम्प्रदाई भक्तों द्वारा। ये मन्दिर, मस्जिद, गिरजे ऐतिहासिक महापुरुषों की लाशों के संग्रहालय हैं। महापुरुषों के सत–असत मानवी जीवन में अमानवीय (तथाकथित दैविय) सत मात्र की अन्ध धारणा ही सम्प्रदायों को जन्म देती है और कालांतर में इन सम्प्रदायों में धर्म के ठेकेदारों का प्रादुर्भाव होता है। ये ठेकेदार धर्म बेचने का धन्धा करते हैं। ईसा के नाम पर क्षमा पत्र बेचे जाते हैं, स्वर्ग–नरक की कल्पनाएं गढ़ी जाती हैं, इच्छाओं की पूर्ति हेतु धर्म को उपयोगित किया जाता है। धर्म लालच, कामना, लोभ, आदि–आदि की पूर्ति का साधन हो जाता है। एषणाओं (धन, पुत्त, यश) की आपूर्ति के नाम पर भोली–भाली जनता को यज्ञ, पूजा, क्रास, मजार, की ओर ढ़केला जाता है। इस सबके लिए धार्मिक गुण्डे महापुरुषों के विकृत किए गए चरित्रों का भरपूर सहारा लेते हैं। "चौपाए" सीधे खड़े नहीं हो सकते हैं। झुकना उनकी नियति है। "दो–पाए" की नियति खड़ा होना है। इस खड़े होने की स्वाभाविकता को आहत करते हैं ये सम्प्रदाय। झुके–झुके लोगों के समुहों का नाम है हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि। झुकना कहीं भी हो झुकना ही है। झुके हुए आदमी की एक ही संज्ञा है, फिर चाहे वह राम की मूर्ति के आगे झुके या कृष्ण की या मरियम की या ईसा या मज़ार के आगे झुके। उसकी संज्ञा हमेशा 'चौपाया' ही रहेगी। 'दो–पाए' को चौपाए की संज्ञा देने वाले इन सम्प्रदायों के घेरों से महापुरुषों को उन्मुक्त करना होगा। महापुरुषों की लाशों को स्वाभाविक बुद्धिमान धार्मिक पुरुषों के रूप में जीवित करना होगा। अप्राप्त ऊंचाइयों से उन्हें प्राप्त ऊंचाइयों तक काटना होगा। काल्पनिक धार्मिक महापुरुषों को वास्तविक ऐतिहासिक महापुरुषों के रूप में बदलना होगा।

झुके–झुके लोगों के समूह के मध्य खड़ा हो जाना एक गुनाह घोषित कर दिया गया है धार्मिक कठमुल्लाओं के द्वारा। हर व्यक्ति को इस गुनाह को स्वेच्छा से करना होगा ताकि मानव धार्मिक हो सके। मुखौटे तोड़नें होंगे। उन लोगों को नग्न करना होगा जिन्होंने दूसरों के कर्मों की खाल ओढ़कर सामाजिक प्रतिष्ठा पाई है। मुखौटे ओढ़े लोग, दूसरों की कर्मों की खाल ओढ़े लोगों को सामान्य व्यक्ति से भी गया–बीता कहना, समझना होगा। उसकी सामाजिक प्रतिष्ठा जिसका आधार झूठा है भंग करनी होगी। तभी समाज में अध्यात्म सांस ले सकेगा।

"जवानी का एक घंटा ऐसा नहीं जिसमें कोई भावी न हो, एक भी पल ऐसा नहीं जिसके चले जाने पर उसका निर्धारित काम बाद में कर सके। गर्म लोहे पर चोट न कर पाए तो फिर ठण्डे लोहे को ही पीटना पड़ता है....।" **रास्किन** के उपरोक्त शब्दों में यथार्थता है। आज धर्म घण्टों में, पलों में व्याप्त भावी को रोकता है। एक स्तर के पश्चात पलों को जीवन में अनवरत मरण देने का नाम है हिन्दू, मुसलमान आदि हो जाना। इस स्तर के पश्चात का पथ है हिन्दू, मुसलमान ईसाई से मानव होना। नष्ट होते पलों, पुराने पड़ गए पलों को जीवित और नया करने के लिए हमें छोटे–छाटे ये घेरे घेरने ही होंगे। इन्हें काटना होगा। इनसे परे सरल रेखा में गमन करना ही होगा। अन्यथा हम सत्यों को भी मुर्दा कर–कर के जीते रहेंगे। आंखें रहते भी अन्धे रहेंगे।

एक गुलशन को उजाड़ने के लिए एक उल्लू काफी होता है। पर इस जगत की गुलशन में हर सम्प्रदाय के वृक्ष की डाल–डाल पर एक–एक उल्लू बैठा है। इस गुलशन का अंजाम कल्पनातीत है। इन उल्लुओं का उल्लूपन खत्म करना होगा। जगत गुलशन को नया, सुन्दर, परिष्कृत, अंजाम देना होगा। ताकि आनेवाले कल में बीता कल न दुहर सके। और सुकरात, दयानन्द, ब्रूनो, स्पिनोजा.....यन्त्रणा और मृत्यु के शिकार न बनाए जा सकें।

१. डबरों से सागर की ओर

अध्यात्म को अन्धेरे के, अज्ञान के, रूढ़ियों के अन्धतम भयानक शिकंजों से उन्मुक्त करना होगा। जो वस्तु जैसी है उसे वैसा ही जानना होगा। जो वस्तु जैसी जानते हैं उसे वैसा ही उपयोगित करना होगा। मैं हिन्दू हूं, मैं मुसलमान हूं, मैं ईसाई हूं, मैं जैन हूं, मैं सिक्ख हूं, मैं बौद्ध हूं, मैं कम्युनिष्ट हूं ये सब के सब भ्रामक कथन हैं। सत्य कथन यह है कि "हिन्दू धर्म मेरे लिए है", "इस्लाम मेरे लिए है" आदि यदि धर्म मेरे लिए है तो मैं अपने को धर्म, सम्प्रदाय के दायरे से बाहर मानता हूं। धर्म का अपने लिए उपयोग करता हूं। पर जहां मैंने कहां मैं फलाना हूं, कि मैंने अपने आपको दायरे में कैद कर लिया। 'मैं' और 'मेरे लिए' के अन्तर को न समझ पाने के कारण इन्सान ने धर्म के हेतु उपयोगित होने की त्रुटि की। इस त्रुटि ने सम्प्रदाय को जन्म दे घृणा, विद्वेष, अशान्ति, दुःख तथा अधर्म के विकराल राक्षस समाज उपवन

में खड़े कर दिए हैं।

मानव–व्यक्तित्व, मानव–अस्तित्व, मानव–परिचिन्तन तथा मानव–कर्म सम्प्रदाय के संकीर्ण दायरों से उन्मुक्त करने होंगे। सम्प्रदाय गढ़ जहां हमने महापुरुषों और भगवानों को भी गढ़ा है, जन्म दिया है वहां उनके व्यक्तित्व को सीमित भी किया है। उनके नामों को जिन्दा रखने के प्रयास में उनके गुणों की हत्या भी की है। हर सम्प्रदाय के मसीहा महापुरुषों को दायरे में सीमित कर उनके गुणों का सही व्यापक मूल्यांकन नहीं होने दिया गया है। हमें आज भूल सुधार करनी होगी। वरन् इन महापुरुषों के धवल प्रेरणादायक चरित्र उलझ–उलझ कर धर्म–अधर्म की इस छींटाकशी में बिखर–बिखर कर पूर्णत: नष्ट हो जाएंगे।

हमारा पवित्र दाइत्व है कि हम इन महापुरुषों को लघु घेरों से उन्मुक्त करें। जब ये महापुरुष अपने गुण रूप में मानव–मानव में जीवित हो उठेंगे तभी धर्म सार्थक होगा। हम अपने वैचारिक अस्तित्वों पर लादे गए अनफिट अर्थात कहीं तंग, कहीं ढीले संकीर्णता के लबादे उतार फेंके। कुएं के मेंढ़क से डबरे के मेंढ़क न बनें। सागर की ओर कदम धरें।

किसी भी सम्प्रदाय का आधार घृणा नहीं है। इन सम्प्रदायों में फैली नफरतों के आधार में भी प्रेम है। अपने से प्रेम करने वाले किसी से नफरत नहीं करते। **जो अपने से प्रेम करते हैं वे सबसे प्रेम करते हैं। या सबसे प्रेम करने वाले ही अपने से प्रेम कर सकते हैं।** यही महा धर्मवाक्य है। इसी के सहारे सभी घेरे तोड़े जा सकते हैं। एक शत प्रतिशत सच्चा हिन्दू सच्चा मुसलमान, सच्चा ईसाई भी होगा। शत प्रतिशत सच्चा ईसाई, सच्चा मुसलमान सच्चा हिन्दू भी होगा। यह एक धार्मिक आवश्यकता है। शत प्रतिशत परिशुद्धता में जब सब एक हैं तो फिर इतने सारे नाम क्यों धरे जाएं?

"अपने को धोकर पवित्र करो, भलाई करना सीखो, पीडितों का दु:ख दूर करना सीखो।" [२४] इस धर्मवाक्य से क्या कोई मुसलमान, ईसाई या हिन्दू इसलिए इन्कार कर सकता है कि यह यहूदी ग्रन्थ में लिखा है? "धन्य हैं वे जिनके हृदय शुद्ध हैं। धन्य हैं वे जो शान्ति करानेवाले हैं, मेल–जोल करानेवाले हैं।" [२५] क्या यह वचन ईसाई ग्रन्थ में लिखा गया इसलिए शाश्वत होने पर भी हम गलत मान लें? शब्दों को बदल देने से सत्य नहीं बदल जाते। "ऐ ईमान वालों! क्यों कहते हो ऐसी बात जो करते नहीं?" [२६] "तुम नेक काम करने की नसीहत देते हो और अपने को भूल जाते हो।" [२७] हमें अपनी आंखें खोलनी होंगी... अन्दर भी और बाहर भी। सत्य यदि बाहर है तो उसे भी स्वीकारना होगा। असत्य यदि अन्दर भी है तो उसे भी स्वीकारना होगा। विश्व को पूर्ण रूप में यथावत जानना होगा.. यथावत जीना होगा।

२. औरों के लिए रो दें

ब्रह्म को जितने भी रास्ते जाते हैं औरों के मार्फत ही जाते हैं। कोई भी आदमी से सम्बन्धित हुए बिना मोक्ष तक नहीं पहुंच सकता। इस कडी को भुला देना, आदमी को प्यार न करना अध्यात्म से भटक जाना है।

"क्या करेगा प्यार वह ईमान को
क्या करेगा प्यार वह भगवान को
होकर के एक इन्सान जो
कर न सका प्यार एक इन्सान को"

नीरज के इन शब्दों को गहराई तक हमें जीना होगा। ईमान, भगवानों को प्यार करने के लिए इन्सानों को प्यार करना होगा। हम इन्सानों के प्यार में व्यापक हो जाएं। मोक्ष, ब्रह्म हमें अप्राप्त न रहेगा।

अबू बेन सो रहा था, सपने में परी आई। सुनहरी किताब के सुनहरी पन्नों पर कुछ लिख रही थी उनका नाम जो परमेश्वर से प्रेम करते हैं। अबू का नाम उसमें नहीं था। उसने परी से कहां "मेरा नाम इसमें लिख लो तथा यह लिख दो कि अबू परमेश्वर के बन्दों से प्यार करता है। कई दिन बीत गए, अबू को एक बार फिर सपने में वही परी दिखी। उसके पास के हीरक पुस्तक के हीरक पन्नों पर उनके नाम अंकित थे जिनको परमेश्वर प्यार करता है। अबू ने पूछा "मेरा नाम है इसमें?" परी ने दिखाई पहला नाम अबू का था। परमेश्वर उन्हें सर्वाधिक चाहता है जो परमेश्वर के बन्दों को प्यार करता है। परमेश्वर का बन्दा हिन्दू भी उतना ही है जितना मुसलमान, ईसाई या और कोई। इन बन्दों के बीच दीवारें खींचना अपने को प्रभु से दूर करना है। इन खींची दीवारों को तोड़ना अपने को प्रभु के निकट करना है।

अपने आप को जितना करता है उतना ही आदमी दूसरे को प्यार कर ले तो वह धार्मिक हो जाएगा। सही अर्थों में आध्यात्मिक हो जाएगा। इस पथ पर तो दीवाना चल पड़ता है। उसका आशियां गैरों का अपनत्व ही होता है। वह इन्सान की इस खूबसूरत परिभाषा में ढ़ल जाता है।

मिटाकर आशियां अपना
बसा दे गैर की महफिल,
बलाएं लूं में उस दिल की
जो औरों के लिए रो दे।

अपने जख़्म भूल औरों की ख़रोंचों पर मलहम लगाने वाले सत्पुरुषों के लिए किसके मन में प्यार न होगा.. आदर न होगा? इस पथ पर चल पड़ने वाले के लिए धर्म जीना उतना ही सरल होता है जितना कि सांस लेना।

३."एक ही कौम"

"दाया राखे धर्म को पाले जग सूं रहे उदासी।
अपना सा जीव सबका माने ताही मिले अविनाशी।।"

दया है जिसके मन में, धर्म पर चलता है जो जगत से तटस्थ रहता है। और अपने प्राणों सा सबके प्राणों को जानता है। कबीर कहते हैं "ताहि मिले अविनाशी" उसे जिसका कभी नाश नहीं होता वह परमात्मा मिलता है। **हमें हमारे प्राण जितने प्रिय हैं उतनें ही संसार के समस्त प्राणियों को उनके प्राण प्रिय हैं।** यह बात जिसने समझ ली वह घेरों में नहीं घिरा रह सकता है।

'विश्व अपनत्व' का सोम जिसने पी लिया है, वह **"समस्त पिरोई एक ही सूत"** को पहचानता है। मानव–मानव तो एक ही विश्वमाला के मनके हैं। एक ही धागा सभी को एक दूसरे से जोड़ता है। वह एक ही पिता है जिससे सबका विकास हुआ है। सभी जीवों में उस एक प्रभु का निवास है। **"सब मई रमि रहियो प्रभु एको पेखि पेखि नानक बिगसाई"** यह आनन्द हर मानव के लिए सुलभ है। शर्त है तो बस एक कि "विश्व अपनत्व" की धारा से अपना जीवन सरोबार कर लो। "एक ही नूर है जिससे यह जगत विकसित हुआ है। हर मानव प्रकृति पुत्र है। फिर कौन बुरा है और कौन भला?" [२८]

अव्वल अल्ला नूर उपाया,
कुदरत दे सब बन्दे।
एक नूर तें सब जग उपजया,
कौन भले कौन मन्दे?

भले बुरे का भेद मिटाना प्रथम आवश्यकता है उस एक नूर तक पहुंचने की। उस सर्वाधार नूर तक पहुंचना, उसे जानना पहचानना ही अध्यात्म है।

"अपने दिल को पाक कर" [२९] जिसका दिल पाक नहीं है उसका धर्म मर जाता है। दिल में छुपी सबके लिए जो मुहब्बत है, उसे पहचानना ही दिल का पाक होना है। **"सभी इन्सान हैं एक कौम के"**[३०] यह महामन्त्र है अध्यात्म का। सभी इन्सानों का एक ही कौम का होना, आपस में भाईचारा होना, स्नेह होना कितना बड़ा सत्य है। "लोगों ने अलग–अलग होकर अपने अपने बाड़े बना लिए हैं। पर जाना है सबको एक ही प्रभु के पास।" [३१] सबको घेरे घेरने ही होंगे। घेरों से बड़ा होना ही होगा। अपने–अपने बाड़े तोड़ने होंगे। उस अल्लाह के पास जाने के लिए। सबके दिलों को एक सूत्र में पिरोने का काम सर्वपिता का है। "अल्लाह ने सबके दिल एक कर दिए हैं। सबके दिलों के भीतर मुहोब्बत भर दी है। तुम सारी दुनियां की दौलत खर्च कर देते तो भी सबके दिलों को एक नहीं कर पाते। लेकिन अल्लाह ने सब में मुहब्बत भर दी है।" [३२] इस मुहब्बत के पाक तार पर जो जीवन संगीत गाता है वही नबी होता है, मोमिन होता है।

"तुम में से कोई मोमिन नहीं हो सकता। जब तक कि अपने भाई के लिए वही न चाहे जो अपने लिए चाहते हो।" बुखारी और मुस्लिम! इस कथन की सच्चाई को कर्मो से आंकना होगा। अपने आपको कर्मो से आंज–आंज कर पाक करना होगा, तराशना होगा। मुहब्बत से तराशा गया आदमी देवता होता है। "अल्लाह तुमसे मुहब्बत करता है, जैसा कि तुम अल्लाह के लिए उसके बन्दों से मुहब्बत करते हो।" –मुस्लिम। कुरान की ही एक आयत में कहा है "सबसे अफजल सबसे उम्दा मजहब यह है कि जिसे तुम अपने लिए करीह या तकलीफदेह समझते हो, उसे सबके लिए तकलीफदेह समझते हुए किसी के प्रति वैसा व्यवहार मत करो।" यह उम्दा मजहब ही अध्यात्म है, धर्म है।

अध्यात्म पथ बड़ा स्पष्ट है उनके लिए जिनके मस्तिष्क के कपाट खुले हुए हैं। मस्तिष्क के कपाट बन्द होने पर अध्यात्म पथ सर्वाधिक अस्पष्ट हो जाता है। जिसकी छाया पड़ने से इन्सान अन्धा हो जाता है वह सम्प्रदाय है। जिसकी छाया पड़ने से इन्सान की आंख खुल जाती है, वह अध्यात्म है। अन्धा वही कुछ देख पाता है जो उसे शब्दों से दिखाया जाता है। आंखों वाला अतिरिक्त भी देखता है। भीड़ क्यों हो जाता है आदमी? भीड़ भी बड़ों–बड़ों की आंखें अन्धी कर देती है। एक दफा इलाहाबाद में कुम्भ का मेला था। ६० लाख लोग वहां इकट्ठे थे । पण्डित नेहरु ने वह देखा। उनकी आंखों में पानी आ गया। पण्डित नेहरु पुरानी पद्धति के धार्मिक नहीं थे। उन्होंने कहा "६० लाख यानी युरोप का एक राष्ट्र हो गया। इतने लोग ढोंगी नहीं हो सकते।" [३३] पण्डित नेहरु जैसे व्यक्ति को भी भीड़ अन्धा कर देती है। वह अपनी राख का अंश गंगा में प्रवाहित करने की कामना कर मर जाता है।

"प्रत्येक दिशा से हमें नेक और शुभ विचार प्राप्त हों।" [३४] हम दिशाओं में फैलें। इस व्यापक विश्व में "जो जानता है फैले हुए उस सूत्र को, जिसमें सब प्रजाएं पिरोई हैं वह सूत्र के सूत्र को जानता है, वह ब्रह्म को जानता है।" [३५] ब्रह्मवेत्ता होने की आवश्यक शर्त है प्रेम की लड़ी को पहचानना। उस लाली को पहचानना जो लाल की है। मानव सबसे अधिक प्रेम अपने आप से करता है। क्योंकि अपने आप के लिए सब प्रेम करते हैं। अपने आप से किए जाने वाले प्रेम का विस्तार करना धर्म का प्रथम चरण है। "जो संसार के समस्त प्राणियों को आत्मवत जानता है, उसे कहां मोह, कहां शोक? वह तो एक ही एक देखता है।" [३६] मोह, शोक रहित होने का न्यूनतम सरल रैखिक पथ है अपने आपसे किए जाने वाले प्यार का विस्तार। जो अपने आप या दूसरे को नहीं चाह सकता वह अध्यात्मिक नही हो सकता, मानव नहीं हो सकता है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि न अध्यामिक हैं, न मानव।

४. मानवता

त्सू कुंग पुछता है "एक शब्द में बताइए मन्युष्य का कर्तव्य क्या है?" कांगफ्यूत्सी करता है "भाई–चारा प्रेम।" **'मत करो दूसरों के साथ वैसा व्यवहार जैसा कि तुम नहीं चाहते कि वे तुम्हारे साथ करें।'** [३७] इतने बडे धर्म का सन्देश छोटा सा भोला बालक भी सहजत: देता है। उसे हल्का सा चपत लगाने पर वह हल्का सा आप को चपत लगा देता

है। उसका गाल प्यार से चूम लेने पर वह प्यार से आपका गाल चूम लेता है। "दूसरों के साथ वही व्यवहार करो, जो तुम अपने लिए चाहते हो" यह महा अध्यात्म वाक्य है। इसे जीना ही जीना है। वरना सांसों का क्रम तो केंचुए को भी मिला हुआ है। जमीन पर नाक रगड़ते हुए आदमी और केंचूए के अन्तर को खत्म करने के लिए आदमी को आदमी तक उठना ही होगा।

"मुझे अपना शरीर जैसा प्यारा है उतना ही सभी प्राणियों को अपना शरीर प्रिय है। यह समझकर समस्त प्राणियों के प्रति प्रेम रखना चाहिए।" [३८] स्वयं का स्वयं से सब प्राणियों तक का विस्तार। इतनी उदात्त भावना रखने वाले ग्रन्थों को मानने वाला जैन कैसे हो जाता है आदमी से? समझ ही नहीं आता कि वह धर्म से अधर्म में कैसे चला जाता है? "सबके भितर एक ही आत्मा है।" [३९] फिर आदमी आदमी में भेद कैसा? जैन जैन में, हिन्दू हिन्दू में, मुस्लिम मुस्लिम भर में भाईचारा क्यों? यह धर्म हत्या, अध्यात्म हत्या क्यों? धर्म के उत्कृष्ट रूप में परिशुद्ध रूप में एक ही पावन प्रेम की धारा चहुंदिशि प्रवाहित हो रही है। इस उत्कृष्ट रूप के प्रति आंखें मूंदने पर ही हम हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि होते हैं। हमें आखें खोलनी होंगी। ये घेरे भस्म करने होंगे। अहिंसा या महाप्रेम जीना होगा। चाहे शत्रु हो, चाहे मित्र, चाहे दुश्मन हो, चाहे मीत, सभी जीवों पर, सभी प्राणियों पर समभाव रखना, सबको अपने जैसा समझना ही अहिंसा है।[४०]

डहरे य पाणे बुड्ढे य पाणे।
ते आत्तओ पासई सब्ब लोए॥

"छोटे ये जीव, बड़े ये जीव, इसी एक तार पिरोए हुए हैं।" यह तार निष्कपट, घेराहीन, उन्मुक्त प्रेम का है। इस तार में बन्ध जाओ मानव! तुम आत्मदीप हो जाओगे।

अपने आपसे भी ऊपर उठकर इन्सान सन्त बनता है। और एक सन्त की कामना होती है– "हे परम पावन प्रभो! मुझे अपनी दिव्य शान्ति का उपकरण बना दे। कि जहां घृणा है वहां प्रेम, जहां युद्ध है वहां क्षमा, जहां दुराव है वहां लगाव, जहां असत्य है वहां सत्य, जहां शंका है वहां विश्वास, जहां निराशा है वहां आशा, जहां अन्धेरा है वहां प्रकाश और जहां उदासी है वहां मैं खुशियों ला सकूं।" [४१] मानव होने का अर्थ ही यही है कि वह क्षमा, सत्य, प्रेम, विश्वास, प्रकाश और खुशियों का आगार हो। इन्सान जग में वही बांट सकता है जो उसके पास होता है। हमें देखना है कि हमें घेरे बांटने हैं या उन्मुक्ति, संकीर्णता बांटनी है या उदात्तता, चौपायापन बांटना है या दोपायापन। हम अपने में मानवता भर लें। हमारे जीवन में मानवता ही इत उत बिखरेगी। सूरज में रौशनी भरी है, वह रौशनी बिखेरता है। बादलों में जल भरा है, वे जल बरसाते हैं। फूलों में खुशबू भरी है, सौंदर्य भरा है; वे खुशबू, सौंदर्य छितरते हैं। बुलबुल में गीत भरे हैं, वह गीत बिखेरती है। धरती में उर्वरा शक्ति भरी है, वह हरितमा फैलाती है। इन्सान में इन्सानीयत भरी है, उसे इन्सानियत ही बिखेरनी है। उसका और कोई विकल्प हो ही नहीं सकता। अन्य सब विकल्प अस्थाई हैं। ओढ़े हुए हैं। इन गलत विकल्पों को, ओढ़ी खालों को उतारना होगा। इन्सान को इन्सानियत से मानव को मानवता से, आदमी को आदमीयत से दैदीप्यमान करना ही होगा।

"आओ हम मज्दा के अधिकारी बनकर अपने को सदा ताजा और चैतन्य महसूस करें। हम विश्व को आगे बढ़ाएं। उषा के, सत्य के, विश्वव्यापी प्रेम के हम सन्देशवाहक बनें। जिससे हम चिश्ती की ओर, ज्ञान के आलोक की ओर सम्पूर्णता से बढ़ सकें।" [४२] ज्ञान के आलोक की ओर सम्पूर्णता से बढ़ पाना तब सम्भव होगा, जब हम विश्वव्यापी प्रेम धारण करेंगे। सत्य, प्रेम, करुणा वे भाव हैं जिन्हें कोई नहीं घेर सकता है। ये भाव मानव ने संकीर्ण कर दिए हैं। इन्हें धारण करके विस्तृत होने की अपेक्षा, इन्हें घेरने की घिनौनी कोशिश की है। मानव आज भिखारी है एषणाओं का, भौतिकता का, जर–जेर–जेवर का। हमें मानव महान को वापस लौटाना है, वहां तक जहां मानव कह उठे।

"हे करुणामय! हे प्रभु महान! तू हमें सत्य दे, प्रेम दे, करुणा दे।" [४३] भरपूर सत्य, भरपूर प्रेम, भरपूर करुणा जहां है वहीं इन्सानियत है।

हम अपने अपने पैमाने में बन्ध गए हैं। इन्ही पैमानों से हम दूसरों को नापते हैं। हम यह भी चाहते हैं कि दूसरे भी हमें हमारे ही पैमानों से नापें। पर दूसरों के पास उनके पैमाने हैं और वे उनसे हमें नापते हैं। और चाहते हैं कि उनसे ही उनको नापा जाए। बस यही साम्प्रदाईकता है। यही अधर्म, अज्ञान है जो मिटाना है, समाप्त करना है। ये पैमाने बदलनें होंगे, यदि हमें धार्मिक होना है। एक दो फुट के पैमानों से सागर नापने का प्रयास छोड़ना होगा। एक दो फुट के पैमाने से हम सागर नहीं, अपना पैमाना नापते हैं। सब पैमानों को पहले एक नाप का करना होगा। न केवल एक नाप का, वरन् शाश्वत करना होगा। ऋत करना होगा। सब पैमानों को मानवता का स्वरूप देना होगा। तब किसी को नापना होगा। मानवता के परिशुद्ध पैमाने से यदि हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध को नापा जाए तो सब बौने ही निकलेंगे। बौने पैमानों से नापकर बौनों को बड़ा कहना समझदारी की बात नहीं है।

मानवता अपनी देवी है
ज्ञान हमारा भैया है
धरती अपनी मैया है
महनत अपनी बहना है
हमें धरती मां की गोदी में
सत्य जीवन साथी संग
जय विश्व जीते रहना है

५."सरलता"

पाक, सरल जीवन जीना हमें प्रारम्भ करना होगा इसी पल से। हम संसार से अभय रहें, संसार हम से अभय रहे। द्वितीय धर्म पग अधिक कठिन है। शेर बकरी से अभय रहे तथा बकरी भी शेर से अभय रहे तब शेर का जीवन अभय गिना जाएगा। सरल जीवन, पाक जीवन जीनेवाले को दर्द, हर्ष नहीं छू पाता। "जिसके जीवन जीने से कोई उद्विग्न नहीं होता, और किसी के जीवन जीने से जो उद्विग्न नहीं होता। हर्ष, अहर्ष, भय उद्वेग से मुक्त रहता वह व्यक्ति ब्रह्म को प्रिय होता है।" [४४] पूर्णत: अनुद्विग्न जीवन जीना एक कठिन साधना है। तभी तो वह उच्चतम धर्म है। धर्म की उच्चतम अवस्था में मानव परिष्कृत होता है। वह समझदारी पूर्वक बचपन जीता है। बचपन में बचपन जीना धर्म नहीं है। बड़े होकर बचपन सा सरल रह जाना धर्म है। "जो मूर्तिमान धर्म बन गया है, वह छोटे बालक जैसा होता है सरल, पवित्र और निष्कलंक"—लाओत्से के उक्त कथन की गहराई को आंकना होगा। "जो अपने को झुका देगा वह सरल होगा। जो अपने को खाली करेगा वह परिपूर्ण होगा। जो अपने को नम्र बनाएगा वह ऊंचा होगा। इसलिए ज्ञानी सरलता का ही पल्ला पकड़ता है।" [४५] सरल, सहज, सौम्य व्यक्ति स्वयं असन्तुष्ट नहीं होता है तथा किसी की असन्तुष्टि का कारण भी नहीं बनता है। वही धर्म जीता है, धार्मिक होता है। किसी भी बाड़े में घिर जाना अपनी व्यापक सरलता को कम करना है। एक हिन्दू मस्जिद में, एक मुसलमान मन्दिर में उतने ही सहज नहीं रहते जितने कि हिन्दू मन्दिर में तथा मुसलमान मस्जिद में रहते हैं। ये असहजता पूजा के बाह्य भेदों पर आधारित हैं। इन बाह्य भेदों को तोड़ना होगा। महत्वहीन करना होगा तभी ये बाड़े टूटेंगे। तभी सहज प्रेम को व्यापकता मिलेगी।

व्यापकता एक अखिल सत्य है। संकीर्णता एक क्षुद्र असत्य है। व्यापकता की एक महत्वपूर्ण कड़ि है आत्मा। आत्मा का प्रयोग में आनेवाला रूप है "मैं"। यह विशुद्ध "मैं" न हिन्दू है, न मुसलमान, न सिक्ख है, न बौद्ध है, न जैन। ये सब तो आवरण हैं, जो हम इस 'मैं' को पहना देते हैं। आवरण या चोला अस्थाई है। अस्थाई चोला धारण कर उसे स्थाई समझकर उससे बन्ध जाना, अपने आप को अपने आप सा न जानना है। सम्प्रदायों ने धर्म की भयानक दुर्गति की है। इसलिए तो धर्म इन चोलों से परे की बात कहता है। धर्म कहता है मैं की तुलना में सर्वत्र जग देखो। "सुख या दु:ख में आत्मा की उपमा से जो सर्वत्र देखता है, वही योगी है।" योग की यह परिभाषा गीता देती है। "सुख दु:ख में आत्मा की उपमा से सर्वत्र देखना योग है।" [४६] परिभाषा से स्पष्ट है कि प्राणिमात्र से समभाव, मैत्री रखना ही उच्चतम ब्रह्म सोपान से जुड़ने का तरिका है। इस सर्वत्र सम के पथ से भटक जानेवाले पूर्णता प्राप्त नहीं कर सकते हैं। छोटे—छोटे झण्डों तले गिरजे, मन्दिर, मस्जिद, गुरुद्वारे बना लेना सर्वत्र सम से भटकना है। धर्म की अपेक्षा निम्नावस्था पर ही रह जाना है।

६. न मम ही ब्रह्म शाश्वत है

मेरा गिरजा, मेरा मन्दिर, मेरी मस्जिद, मेरा गुरुद्वारा आदि; और इन सबसे निकलती आवाजें मेरी बाइबिल, मेरी गीता, मेरे वेद, मेरे पिट्टक, मेरा धम्मपद, मेरा कुरान, मेरे ग्रन्थसाहब आदि यह सब मम मृत्यु है। हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, जैन, बौद्ध आदि—आदि सब आदमी की अपेक्षा से मुर्दे हैं। दो अक्षरों में मृत्यु भोगते इन संकीर्ण मानसिक अपाहिज लोगों को तीन अक्षरों के धर्मपथ पर लाना ही होगा। "दो अक्षरों से मृत्यु हो जाती है, और तीन अक्षरों से ब्रह्म शाश्वत मिल जाता है। मम (मेरा) से मृत्यु, और न मम (न मेरा) से ब्रह्म शाश्वत मिलता है।" [४७]

द्वय अक्षरं मृत्यु भवति त्रय अक्षरं ब्रह्म शाश्वतम्।
ममेति च मृत्यु भवति न मम ब्रह्म शाश्वतम्॥

मम की कठोर बेड़ियों से बन्धा मानव धर्म के क्षेत्र में कितना कराहता है, कितना दु:खी है, कितना उदासीन है यह कोई धर्मान्ध व्यक्तियों को देखकर ही जान सकता है। "न मम" की तीक्ष्ण छेनी से ये बेड़ीयां काटनी होंगी। उन्मुक्ति हर मानव का अधिकार है; सहज, सरल अधिकार है। यह अधिकार मानव मात्र को समान रूप से देना होगा। हिन्दुत्व, मुसलमानियत, ईसाइयत आदि आदि के सकरे मानसिक बन्धन तोड़ने होंगे। इन समस्त बन्धनों का नामोनिशान मिटाकर मानवता की मानसिक उन्मुक्ति का विस्तार करना होगा। तभी मानव जीवन सौम्यता, सरलता एवं पाकता से परिपूर्ण होगा।

"अट्ठाराह पुराणों का सार है दो वचन व्यास के, पर पीड़न ही पाप है परहित ही पुण्य है।" [४८]

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्।
परोपकाराय पुण्याय पापाय परपीड़नम्॥

इन वचनों पर हमें दुहरी मान्यताएं लादने का कोई हक नहीं है। इस परिभाषा का विकृतीकरण करना सबसे बड़ा पाप है। "पर" सर्व के लिए प्रयुक्त हुआ है। मुसलमान का काफिर को पीड़न भी उतना ही बड़ा पाप है जितना मुसलमान को पीड़न, इसी तरह मुसलमान द्वारा काफिर का हित भी उतना ही बड़ा हित है जितना कि मुसलमान का हित। यही हिन्दू आदि के लिए भी है। 'पर' के इस सर्व को संकीर्ण करना अधमता है हर किसी के लिए। **"परहित सरिस धरम नहीं भाई, परपीड़ा सम नहीं अधमाई।"** [४९] जिनके मन में सही अर्थों में परहित है उनके लिए हर कुछ सुलभ है।

मानव मानव यदि समरूप से "मानवहित" की भावना से अपने—अपने क्षेत्र में परिपूर्ण हो जाए, एवं कर्मों में भी इसी भावना को उतार ले तो साम्यवाद से लेकर धर्म तक सभी कुछ सुलझ जाए। सबके जीवन में "एक सब के लिए सब एक के लिए" का महामन्त्र सार्थक हो जाए। "मानव हित" के महा—धर्मवाक्य में सब वाद, सब बाड़ियां, सब सम्प्रदाय, सब घेरे, सब झण्डे, सब मन्दिर मस्जिद सिमट जाएंगे। और यह मानव जाति की सबसे बड़ी सार्थकता होगी। आओ इस सार्थकता की ओर पहला कदम बढ़ाएं! घेरों को घेर

दें! हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि से आदमी बनें। लघुता से महत्ता की ओर अग्रसर हों।

"मां अपने इकलौते लड़के के प्रति रखती है असीम प्रेम, उसे देती है असीम रक्षा। उसी तरह मनुष्य समस्त प्राणियों के प्रति असीम प्रेमभाव रखे।" [५०] समाज स्वस्थ हुए बिना व्यक्ति स्वस्थ नहीं हो सकता। समाज स्वस्थ तभी हो सकता है जब इसमें प्रेम की धारा बहे। समाज की कड़ियां है आदमी। कहीं एक भी आदमी उपेक्षित होगा, नकारा जाएगा, दूसरा आदमी समझा जाएगा तो समाज को पीड़ा होगी। मां अपने इकलौते बेटे पर लुट जाती है जैसे; मानव–मानव पर लुट जाए तो समाज की हर पीड़ा मिट जाएगी। पीड़ा रहित समाज में मानव–मानव आनन्द से सरोबार रहेंगे।

"सब लोग दण्ड से डरते हैं। मृत्यु से सभी भय खाते हैं। जीवन सबको प्यारा लगता है। दूसरों को अपनी तरह जानकर ऐसी उपमा करते हुए मनुष्य न तो किसी को मारे और न किसी को मारने की प्रेरणा ही करे।" [५१] मानव–मानव ९५ प्रतिशत समान ही होते हैं मृत रूप में। इतनी बड़ी समानता को थोड़ी सी असमानता पर नकार देना बुद्धि का घोर अपमान है। हम अपनी बुद्धि को अपमानित न होने दें। बुद्धि में आवरण या घेरे न धंसने दें। एक बार ये आवरण, ये घेरे दिमाग में धंस जाने पर मानव–मानव में समानता पहचानने वाली आंखे हम खो देंगे और अन्धों की दुनियां में शामिल हो जाएंगे। अन्धों की मान्यताएं मान लेंगे। हममें उनमें कोई फर्क न रह जाएगा।

७.मानवता-गृह

मन्दिर, मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे करीब ५० लाख हैं भारत में। ये सब धर्म स्थल मुर्दा संस्कृतियों की लाशें ढो रहे हैं। ये सब अतीती महापुरुषों के मजार हैं। इने–गिने अपवाद स्थलों पर धर्म के नाम पर मनोरंजन, संस्कृति के नाम पर भोंड़े प्रदर्शन, पूजा पाठ के नाम पर ढकोसले और साधनाओं के नाम पर आवेग एंव धोखे प्रसारित किए जाते हैं। ये धर्म स्थल सस्ते लोगों के शोक स्थल हैं। जनता की अन्धी धर्म भावना का लाभ उठाकर कुछ चालू लोग अपनी सस्ती भावनाओं को उभार देते हैं, और एक नाम के धार्मिक अर्थ में अधार्मिक उत्सव का जन्म होता है।

अकेले भिलाई नगर में करीब ३० गरोशोत्सव मनाए जाते हैं, जिनमें चार हजार से आठ हजार तक व्यय किए जाते हैं। दस दुर्गोत्सव जिनमें आठ से दस हजार तक का खर्च, दस ही बसंत पंचमी उत्सव जिनमें दो से तीन हजार रुपए तक का खर्च.. कुल मिलाकर पच्चीस के करीब मन्दिर मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे हैं। जिनमें प्रतिवर्ष आठ से दस हजार तक का औसतन खर्च किया जाता है। यदि यह कुल खर्च जोड़ा जाए तो ———

३० गणेशोत्सव	३० =	६००×	१८०,०००रु.
१० दुर्गात्सव	१० =	९००×	९०,०००रु.
१० बसंत उत्सव	१० =	२५००×	२५,०००रु.
२५ मन्दिर आदि	२५ =	९००×	१२५,०००रु.
			४२,०००० रु. (ये १९७१ के आंकड़े हैं)

इस प्रकार मोटे तौर पर धर्म के नाम पर मनोरंजन में प्रतिवर्ष चार लाख बीस हजार रुपए खर्च होते हैं। धर्म के नाम पर यह सरासर चार सौ बीसी है। इन धार्मिक उत्सवों स्थलों का इस व्यय की तुलना में रचनात्मक योग दान यदि देखा जाए तो वह रात्रि जगराता, भोंड़े प्रदर्शन, छिछले कवि सम्मेलन, छिछले मुशायरे और कुछ अन्ध विश्वासों के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

कब तक? आखिर कब तक धर्म के नाम पर नासमझी के बोझ ढोते रहेंगे? इन मन्दिरों, मसजिदों, गिरजों, गुरुद्वारों का इन पर होनें वाले खर्चों का हमें रचनात्मक उपयोग करना ही होगा। ये आंकड़े केवल भिलाई के हैं। रायपुर, बिलासपुर, नागपुर आदि शहरों के आंकड़े इससे भी अधिक निकलेंगे। धर्म को इस कीचड़ी स्थिति से उन्मुक्त करना होगा, उबारना होगा।

चार लाख बीस हजार रुपए में कितने रचनात्मक मानवतामय कार्य किए जा सकते हैं। इन रुपयों में यदि अस्थाई से कमरों की व्यवस्था हो तो सोलह सौ अस्सी छोटे–छोटे होम्योपैथिक दवाखाने चलाए जा सकतें हैं, या आठ सौ चालीस लोगों को चूड़ी की, खिलौनों की, सब्जी आदि की छोटी–छोटी दुकानों द्वारा आजीविका दी जा सकती है। या सात हजार लोगों को सिलाई की ट्रेनिंग दिलाई जा सकती है, या एक हजार दो सौ सिलाई ट्रेंड लोगों को मशीन दिला कर आजीविका दी जा सकती है। कई विद्यार्थियों की फीस दी जा सकती है। पर यह सब सोचने की इन धर्म–महन्तों सही अर्थों में ठगों ने कभी आवश्यकता नहीं समझी।

आज समय आ गया है कि इन धर्म–स्थलों को इन धर्म उत्सवों को सही अर्थों में मानवता के रचनात्मक मन्दिरों के रूप में बदल दिया जाए। इन मन्दिरों, मसजिदों, गिरजों आदि का बस एक नाम होना चाहिए ...मानवता–गृह। इन्हे स्कूलों, लघु उद्योग केन्द्रों, दवाखानों में बदल देना आज की आवश्यकता है। बातों की भीड़ से इनको कर्मो के अनुशासित समूहों तक लाना होगा। इन मानवता गृहों से निकला हर आदमी चाहे वह आजीविका कमाने योग्य हुआ हो या निरोग हुआ हो या शिक्षित हुआ हो इस भावना से ओत–प्रोत करना होगा कि वह मानव है बस मानव और कुछ नहीं।

अर्जित श्रम मूल्य दो भागो में विभाजित होता है– उपयोग एवं संचित। संचित श्रम का एक नाम है धन। यदि धन को इस रूप में लिया जाए.. (इसे इसी रूप में लेना आवश्यक हैं) तो इसका दुरुपयोग एक गुनाह है। श्रम की बरबादी से बड़ा पाप शायद कोई नहीं है। ये धर्म परम्पराएं, धर्म रूढियां महापुरुषों के जन्मों, मरणों, विजयों पर संचित श्रम तो नष्ट करती ही हैं; नव श्रम को भी नष्ट करती हैं। समय का नष्टीकरण तीसरा पाप है। पुण्य के कहे समझे जाने वाले इन सामुहिक पापों को बन्द करना है। संचित श्रम, नव श्रम एवं समय को नष्ट

होने से बचाना है। समूल परिवर्तन चाहता है आज का प्रचलित धर्म।

धर्म हमेशा सरल होगा, सहज होगा, आवेग से धर्म का दूर तक का भी कोई रिस्ता नहीं है। जो भूल–भूलैया है, जो रहस्यमय है वह धर्म नहीं है। जो स्पष्ट है वह धर्म है। आज भगवान, अल्लाह, यहोबा, ओंकार के आदि के ठेकेदारों ने धर्म को क्लिष्ट, कठिन, टेढ़ा, घुमावदार बना डाला है। धर्म कर्म की गतियों को बड़ा गहन कहा जाने लगा है। कोई विरला ही धर्म को समझ सकता है। इसका व्यापक प्रचार किया जा रहा है। यथार्थता यह है कि यदि धर्म सरल सहज नहीं हैं तो वह अधर्म है। कठिन गहन मति वाला, आसानी से समझ न आ सकने वाला कभी शाश्वत नहीं हो सकता है। धर्म तो शास्वत है। हर किसी को सहज सुलभ है, पर मानव स्वयं ही गलत पर इतना भटक गया है कि सहज, सरल, सुलभ उसे कठिन लगने लगा है। इस भटकाव को खत्म करना होगा । "आह्लाद भरे शब्द लच्छेदार नही होते, लच्छेदार घुमावदार शब्द विश्वास लायक नहीं होते" [५२] पर आज यह नियति ही उतर गई है। आवेगित, घुमावदार, गोल–गोल शब्दों में धर्म को नई–नई परिभाषाओं में और–और विकृत किया जा रहा है। अन्धा–धुन्ध प्रचारों द्वारा मानव जाति को बहकाया जा रहा है। आज जो व्यक्ति जितना अधिक लच्छेदार, घुमावदार, अटपटे, चटपटे शब्दों वाक्यों में धर्म पर भाषण दे सकता है, वह उतना ही बड़ा पण्डित, मौलवी, पादरी है या भगवान, योगी या अवतार है। लच्छेदार बातों के कीचड़ से मानव को उबारना होगा और उसे सहज, सरल, सौम्य, पावन, सभ्य धर्म की शान्तिमय छांव देनी होगी।

आज अधिक व्यापक होते जा रहे इस युग में संस्कृतिक घेराव की परम्पराएं बढ़ती चली जा रही हैं। "भौतिक घटना तथ्य" विज्ञान "व्यापक मानव जीवन" से इसलिए बड़ा नहीं हुआ, कि वह बड़ा है वरन इसलिए बड़ा हो गया है कि मानव बहुत ही छोटा हो गया है। छोटे–छोटे घेरों का ढिंढोरा बहुत बड़ा है। इन घेरों के ढिंढोरों ने वह पद्धति अपनाई है कि मानव अपनी आधार भूत मानवता से पृथक् हो गया है। इन गलत प्रचारों के व्यापक फैलाव का परिणाम यह हुआ है कि हम उन्हीं बन्धनों की, घेरों की जंजीरों को बड़ी ममता से गले लगाते हैं जो हमें बांधती चली जाती हैं। इन बन्धनों का बन्धन ही जानना होगा। आधार भूत मानवता से जुड़ना होगा। घेरों से मुक्त होना होगा। "व्यापक मानव जीवन", "भौतिक घटना तथ्यों" की तुलना में हमेशा का बड़प्पन कायम रखना होगा।

आज शाश्वत प्रेम के पथ से भटक कर मानव इन नकली धर्म राजो द्वारा अन्धा बर्बर पशु बना दिया गया है। ये सब अन्धे युग के अश्वत्थामा हैं। जो "झूठे सत्यों" द्वारा हनित किए जाने पर अन्तस ही अन्तस चीखते हैं अपनी अलग–अलग वाणी में।

"किन्तु नहीं
जीवित रहूंगा मैं
अन्धे बर्बर पशु सा
वाणी हो सत्य धर्म राज की।
मेरी इस पसली के नीचे
दो पंजे उग आएं
मेरी ये पुतलियां
बिन दांतों के चीथ खाएं
पाएं जिसे" [५३]

घेरों घिरे लोग वाणी के खूंखार पंजो से हिंसक पशुओं सा दूसरों को नोचते हैं। इस नोच–खसोट से "मानव–शासक" को बचाना होगा। "मानव–शिशु" को मानवता की सुखद छाया में पालना होगा कि वह झूठे सत्यों द्वारा अन्धा बर्बर पशु न बनाया जाए कि बड़े होने पर वह भी अपनी पसली के नीचे खूंखार पंजे न मांगने लगे।

ये सम्प्रदाय तालाब संकीर्ण ड़बरे हो गए हैं। मानवता आकाश से बरसा प्रेम पानी इनमें रखा रखा सड़ चला है। इन डबरों में खिले कमल हिन्दू, मूसलमान, सिक्ख, ईसाई, बौद्ध, जैन, आदि–आदि मुरझाने की और बढ़ रहे हैं। इस पानी को शुद्धता देने पर विचार जब करते हैं, तो पता चलता है कि यह पानी इस बुरी तरह सड़ गया है कि इसे शुद्ध ही नहीं किया जा सकता है। अरे धर्म के ठेकेदारों! अरे गलत इन्सानियत पूजने वालों!! अरे अरे निष्ठुर मालियों!!!

अब तो इस तालाब का पानी बदल दो,
ये कमल के फूल कुम्हलाने लगे हैं। [५४]

किश्तियां बान्धने के लिए बने थे संसार नदी के तीर, ये मन्दिर, मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे के घाट। ताकि लोग इन घाटों से संसार नदी में सफलता पूर्वक पार कर लें। हंसते–हंसते हल्के–फुल्के पार उतर जाएं। आज इन घाटों नें अपनी किश्तियों में कई–कई छेद कर लिए हैं और पुकारते रहते हैं....

हो गई हर घाट पर पूरी व्यवस्था,
शौक से डूबे जिसे भी डूबना है। [५५]

डूबने की व्यवस्था देनें का हक इन अन्धी कलमों के हाथों से छीन लेना होगा। इन छिद्रित नावों को तोड़ना होगा। इन फिसलन भरे घाटों का पूरी तरह नव सृजन करना होगा ! उन्हें "मानवता –गृहों" के रूप में परिवर्तित करना होगा। हम सबको अपने आप में करोड़ करोड़ लोग बसाने होगें.. जिन्हे गूंगा कर दिया गया हैं, जिन्हें अन्धा कर दिया गया है, जिन्हे बहरा कर दिया गया है.. और करोड़ों को आवाज देने

चीखना होगा....

"मुझ में रहते हैं करोड़ों लोग
चुप कैसे रहूं?" [७६]

समझदार लोगों की अपनी चुप्पी तोड़नी होगी .. और घेरे घिरे गूंगो को भी आवाज देनी होगी। हमें इन घेरों, इन जंजीरों, इन दीवारों को जो मानवता को बांटती हैं तोड़ना होगा। इनमें घिरे मानवों को घुटन भरे कारागाहों से उन्मुक्त करना होगा, कि ये भूले आदमी .. बाहर आकर खुली हवा में सांस ले सकें।

८. "दिव्य-मानव"

स्वर्ग कहां हैं? "अल जन्नतों तहता कदम इल उम्म" कुशन शरीफ बहिश्त, स्वर्ग फैला हुआ हैं मां के पेरों के तले। ममता की पावन घनिष्ठ छांह ही स्वर्ग है। हम सबनें कम – अधिक समय के लिए गुनगुनाती ममता की छाया में सुखद सांसे ली हैं। आश्वस्ति भोगी है। हम वह ठहरा ठहरा आनन्द जानते हैं। ममता प्रेम ही आनन्द है, दुश्मनी घृणा ही दु:ख है। घेरे दुश्मनी पैदा करते हैं अत: दु:खद हैं। हमें सुखद की और बढ़ना है। अत: ये घेरे तोड़ने हैं।

बाईबिल में ईसा मसीह कहते हैं ... Do unto other as you would that they should do unto you, this is whole of the law and the prophets .. "दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करो जैसा तुम चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ करें। सब धर्मो सब पैगम्बरों की सीख बस इतनी सी हैं।" आदमी को सबसे प्यारे अपनें प्राण हैं! आदमी को ही नहीं संसार के समस्त प्राणियों को अपनी जान सर्वाधिक प्रिय हैं। यही सही अर्थो में पहचान लेना ही धर्मिक होना हैं।" समझ कर जान अपनी सी दुखाओ मत किसी का दिल"! दु:ख बांटने पर दूसरा भी हमें दु:ख ही देगा! सुख बांटने पर दूसरा भी हमें सुख देगा। भलाई करो तुम्हारा भला ही होगा।

एक छोटा सा सच हैं "जो मंदिर है वही गुरुद्वारा है, मसजिद और गिरजाघर है। [७७] इतना छोटा सा सत्य पहचान कर आदमी कितना बड़ा हो जाता है। वह आदमी जो यह सच जानता हैं.. हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि से कहीं बड़ा हैं क्योंकि वह हिन्दू भी है, मुसलमान भी है, सिक्ख भी है, ईसाई भी है या एक बात में कहा जाए **तो वह आदमी है** और उनसे निश्चत्त: बड़ा है जो आदमी से कम हैं। जब कोई भी साम्प्रदाई व्यक्ति मनुष्य बन जाता है तो उसकी आंतसिक चेतना वातावरण में आनंद धाराओं के रूप में बह बह जाती हैं और चारों ओर पावनता, शान्ति, सौम्यता, स्नेह, सौदर्य तथा सुख ही सुख फैला देती है। परम चैतन्य से वह चेतना आप्लावित होती है।

मानव सृष्टि की सर्वोतम रचना है। मानव विशुद्ध क्षमता हैं परम होने की। इस विशुद्ध क्षमता की उत्तरोत्तर जागृति एवं विकास ही मानव का सर्वोच्च कर्तव्य है। इस सर्वोच्च कर्तव्य की राह में आने वाले रोड़े ही अधर्म है। विकास सोपानों पर उत्तरोत्तर प्रगति करने से सम्प्रदाय रोकते हैं। अत: सम्प्रदाय अधर्म हैं। विशुद्ध क्षमता को कुंठित कर देने पर मानव हो जाता है हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि। इस क्षमता को विकास देने पर ही वह बनता है इन्सान। इस मानव की सृष्टि में श्रेष्ठता अपूर्व है.. अद्भुत है..।

"मानव परम दिव्य कलाकार ही अभिनव कृति है। मानव की विचारणा शक्ति कितनी उदात्त है। सामर्थ्यो की अनन्त क्षमतायुक्त, परिधानों एवं कर्मो में कितना अभिव्यक्त एवं सराहनीय है। उद्योग में स्वर्ग दूतों सा सहज, उत्तमता एवं सर्वोच्च सौंदर्य की प्रतिमूर्ति का साक्षात रूप यह मानव जीवों का सिरमौर है।"[७८] इतना ऊंचा .. इतना विशुद्ध, इतना दिव्य मानव जब मूर्तियों, पत्थरों, मजारों के आगे सिर पटक पटक कर रोता है, उनमें भीख मांगता हैं उनके पांवो में गिड़गिड़ाता हैं तो मानवता अपनें इस बेटे के घोर पतन पर आंसू बहाती है। अरे इन्सान उठ अपनें अदंर धंसे इन अंधेरों के टुकड़ों को अपने शौर्य के प्रकाश से विनष्ट कर दे। तू गिड़गिड़ाने के लिए पैदा नहीं हुआ है, सिर झुकाने के लिए पैदा नहीं हुआ है, तेरी राह मे दिव्यता की राह है.. तेरा अन्तस् तो आनन्द का सागर है.. उठ इस आनन्द के सागर से सरोबार जो लोग हैं उनकी श्रेणी तक उठ.. आह्लादित तू दिव्यता के गीत गा.. गुनगुना विह्वलता में! अपनी क्षमताओं का विकास कर! पूर्ण विकास कर! अरे मानव ये सौदा बड़ा सस्ता है। नन्हें नन्हें सुख बांट कर जग में... ढेर ढेर सारे प्यार बटोर ले!

मानव रे तू "स्वाहा" हो जा! चारों और इत् उत् सर्वत्र एक अग्नि जल रही है! इस हर सम्प्रदायी धर्म में सतत् जलने वाली अग्नि का नाम है प्रेम! अपने आप सा सबसे प्रेम! इस दिव्य प्रेम की चादर ओढ़ ले रे मानव! बाकी सब छोटे छोटे चोले उतार फेंक! इस दिव्य प्रेम को अपना स्व अपना आत्म समर्पित कर दे अरे मानव.. बिखर बिखर जा सबका आत्मीय बन इस दुनियां में। तू अकेला बस सबका अपना हो जा, उतना ही अपना हो जा जितना तू खुद का अपना है। फिर आनंद की एक धारा चारों और बह जाएगी! मानव रे घेरे तोड़ दे!!

मेरा एक भयानक घेरा है। "यह नहीं मेरा" का महापाठ तू जानता है रे इसे जी ले। इदं न मम अपने जीवन में सार्थक कर ले। मम की सब क्षुद्र सीमाएं उठ.. उठ तोड़ दे! ये छोटे छोटे घेरे तो पिंजरे हैं इनकी तीलियां केवल तेरी कल्पना है अपने ज्ञान के पंख पसार.. इन तीलियों की विचारणा की तर्कश्य चोंच से परे तो करके देख.. ये सब हट जाएंगी.. मानव रे मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारे, गिरजे के छोटे छोटे पिंजरों में तू उड़ न सकेगा.. इनका विकास कर इन्हे मानवता गृह बना कि विश्व एक नीड़ हो सके.. तू .. तू उन्मुक्त दिव्य आकाश में उड़ सके।

घेरों को घेर दे रे मानव! तू मनुष्य बन.. आदमी बन.. इन्सान बन! सर्व व्यापक उस परमात्मा से तू अर्चना कर..

"हे दृढ़ बनाने वाले ब्रह्म! मुझे ऐसा दृढ़ बना कि विश्व के सारे के सारे प्राणी मुझे मित्रता से देखें! मैं भी सबको मित्रता से देखूं। (हम इतने

दृढ़ हो आपस में) कि सब एक दूसरे को मित्र की ही दृष्टि से देखे!" [५९]

विश्व मैत्री का अध्यात्म स्वप्न यथार्थ करने के लिए हमें ये छोटे छोटे घर त्यागने होगें। "जय व्यक्ति" से 'जय गृह'.. 'जय गृह' से 'जय नगर' से 'जय–प्रांत' से 'जय जगत' से 'जय विश्व' से 'जय ब्रह्माण्ड' को सार्थकता देनी होगी– अपनी प्रसुप्त क्षमता के अनन्तीय स्वरूप को यथार्थत: अनन्त करना होगा!

१. विज्ञान और अध्यात्म

पदार्थ संघीभूत शक्ति है। मानव संघीभूत चैतन्यता हैं । "संघीभूत शक्ति" पदार्थ की पदार्थ नहीं जानता है। संघीभूत चैतन्यता मानव की मानव जान सकता है। पदार्थ की संघीभूत शक्ति को जानना विज्ञान है। संघीभूत चैतन्यता को जानना अध्यात्म है। विज्ञान मानव की उन क्रियाओं का परिणाम है जो मानव भौतिक शक्ति के अन्वेषण के लिए करता है। मानव की समस्त क्रियाएं इंगन हैं.. उसके स्वयं की ओर। समस्त क्रियाओं का उद्‌गम स्थल एक केन्द्रक है। इस केन्द्रक की एक संज्ञा हैं आत्मा। इस केन्द्रक तक केन्द्रीभूत होना ही अध्यात्म हैं।

मानव के पास अध्यात्मिक होने के अतिरिक्त और कोई विकल्प ही नहीं है। मानव ही नहीं सृष्टि के प्राणीभर के पास एक ही विकल्प हैं केन्द्रक तक केन्द्रीभूत होना। हर प्राणी स्व–केन्द्रीत होने का प्रयास करता है। इस स्व–केन्द्रक के पथ में कई अस्थाई पड़ाव हैं इन पड़ावों पर कोई बहुत अधिक देर तक रुक जाता है, तो कोई बहुत कम देर तक रुकता है" अंतर यही है कि कोई स्थाई को अस्थाई जानता है कोई नहीं जानता है या कम कम जानता है। "स्वकेन्द्रक" एक सहज प्रवृत्ति है जो हर सांस लेने छोड़ने वाले प्राणी के साथ जुड़ी है।

इस केन्द्रक को जानते ही मानव "सर्व केन्द्रक" तक जा पहुंचता हैं । "वह प्रकट होते ही साथ अनंत तक फैला हैं" [६०] सर्व केन्द्रक के फैलाव में फैलना ही अध्यात्म है। "इस को देखने के लिये जरा गर्दन झुकानी पड़ती है।" [६१] केन्द्रक यह संघीभूत चैतन्यता का आधार है। यह केन्द्रक निश्चित है। पर एक स्वच्छ पर्व सा है।

"दिल के आइने में है तस्वीरे यार
जब जरा गर्दन झुकाई देख ली ।

परिशुद्ध स्वकेन्द्रण अवस्था में हर मानव समान होता है। अध्यात्म वही है जो मानव मानव को समता के एक उच्च स्तर पर स्थापित कर देता है। "संसार के महानतम पुरुष या महानतम नारी निन्यानवे प्रतिशत तुम्हारे समकक्ष है" इस सूक्ति में बड़ा गहन अर्थ निहित है.. यह जो एक प्रतिशित की दूरी है यह दूरी भी केन्द्रक में केन्द्रित होने की दूरी है.. यदि मानव स्व–केन्द्रक में केन्द्रित हो जाए तो वह शत प्रतिशित महानतम पुरुषों या नारियों के समकक्ष होता है। "जीवन के लक्ष्य साधन में सिद्ध, पुरातन, पुण्यवान महात्माओं के भीतर जो शक्ति–सामर्थ्य विद्यमान थी तुम्हारे भीतर भी वही शक्ति सामर्थ्य विद्यमान है।" [६२] हर पल की समझदारी मानव की प्रगति को तीव्र करती है। स्व केन्द्रक के पथ की बाधा है.. दासता, रूढ़ियां, रस्में और अपने आप से अपने आप का भटक जाना। मानव इस भटकाव से वापस लौट आओ" आत्मन सभी प्रकार के दासत्व, पराधीनता और आत्म विस्मृति के मोह ग्रास में अपना उद्धार करके अन्तर्निहित सुप्त शक्ति को जागृत कर डालो.. आज जो दु:साध्य या असम्भव सा जान पड़ता है वही निरंतर साधना और अभ्यास के द्वारा सुसाध्य और सम्भव हो जाएगा परन्तु इसके लिए चाहिए विराट उद्योग, अंनत आसीम धैर्य्य, अदम्य, अनन्त असीम उत्साह उद्यम और अध्यवसाय"। [६३]

'सम्प्रदाय' जिन्हे भूल से धर्म की संज्ञा दे दी गई है.. इस अध्यात्म की छाया मात्र है। हिन्दु, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, जैन आदि आदि धर्म कुछ महापुरुषों के अध्यात्म की धाराएं है। ये समस्त धाराएं अपने अपने क्षेत्र में समान है। इन छायाओं से अध्यात्म का भान तो होता है पर अध्यात्म के सही स्वरूप का बोध नही होता है।

२. अध्यात्म याने आत्मा में

अध्यात्म शब्द में दो शब्द है 'अधि' और 'आत्म'.. अधि + आत्म का सीधा सादा शाब्दिक अर्थ हैं आत्म में। अंतस् बाह्य की समस्त क्रियाएं शमित हो जाती हैं जब.. तब अस्तित्वीय चैतन्यता क्रियाओं के उद्‌गम स्थल मे लवलीन हो जाती हैं.. यही "आत्मा में" का अभिप्रेत अर्थ है। "आत्मा में" याने कि "मैं–में"। यह "मैं" समस्त बाह्य उपाधियों का मूल धारक है। मैं इन्जीनियर हूं, मैं डॉक्टर हूं, मैं वकील हूं, मैं कवि हूं, मैं लेखक हूं से प्रारंभ करके मैं बाप हूं, बेटा हूं, भाई हूं.. आदि आदि सब 'मैं' का बाह्य होना है। इन उपाधियों में बंध जाना अध्यात्म से भटकाव है। मैं हिन्दू हूं.. मैं मुसलमान हूं.. आदि आदि भी उतना ही असत्य है जितना मैं दुकानदार हूं आदि है। मैं ब्रह्म हूं.. भी सत्य के निकट नहीं है ..। निकट सत्य है "मैं हूं" और निकटतम सत्य है.. "हूं"। "होना" ही यथार्थ "मैं–में" या अध्यात्म है।

"मौन" समस्त शब्दों का उद्‌गम स्थल है। 'मैं' समस्त कार्मो या भावों का उद्‌गम स्थल है।

"क्षिति में जल में
नभ में - अनिल में-
सिर्फ एक अव्यक्त शब्द सा
'चुप, चुप, चुप'
है गूंज रहा सब कही।" [६४]

समस्त शब्दों में जो इस व्यापक "चुप" की स्थिति है.. "चुप" की गूंज है.. वही स्थिति इतनी फैली भौतिक क्रियाओं में "मैं" की है। असंख्य शब्दों से एक "चुप" अभिव्यक्त होता है। असंख्य भावों, आवरणों से एक "मैं" अभिव्यक्त होता है। इस "एक मैं में" पहुंचना ही अध्यात्म है।

"भान" एक इंगन है.. ऐसे कई कई आभास हैं जो मैं की और प्रषित करते हैं। 'मैं' में डूबकर भी मानव अडूबा ही रहता है.. उसे इसे डूबने का सही सही आंकन नहीं होता है। किसी ने भी देवताओं के विषय में और जिसे मैं सर्वव्यापक प्रकृति कहता हूं सम्पूर्ण निश्चय प्राप्त नहीं किया है और न कोई इसे प्राप्त ही कर सकेगा। इतना ही नहीं यदि मनुष्य को कभी सत्य का प्रकाश मिल भी जाए तो भी उसे यह ज्ञान न होगा कि उसे प्रकाश मिल गया है क्योंकि प्रतीति समस्त वस्तुओं को आवृत किए हुए है।"[६५]

"बुराई से भागने के लिए हमें अधिकतम सीमा तक ईश्वर के समकक्ष बनाना होगा। ईश्वर के समकक्ष बनना याने कि यथा उचित (यथावत करना, कहना) और धार्मिक (पवित्र) और बुद्धिमान बनना" —**प्लेटो**। आध्यत्मिक होने का अर्थ हैं स्व—स्वरूप को आंजना मांजना और तब तक अंजना मांजना जब तक कि वह शत प्रतिशत परि शुद्ध न हो जाए। परिशुद्धतम मैं ब्रह्म समकक्ष है हमारी सीमितता में भी। सीमितता में ब्रह्म समकक्षता प्राप्त करना अध्यात्म है।

३. उत्तरोत्तर सिढ़ियां

सम्प्रदाय, धर्म.. दर्शन, अध्यात्म ये उत्तरोत्तर सीढ़ियां हैं। सम्प्रदाय सीमित धर्म है, धर्म सीमित दर्शन है, दर्शन सीमित अध्यात्म है। सम्प्रदाय रंगीन कांच के चश्मे से तथ्यों को देखना है, धर्म कमजोर दृष्टि से देखते हुए तथ्यों को जीना है, अध्यात्म परिमार्जित सत्य जीने पर प्राप्त उपलब्धि है। सम्प्रदाय आवेग हैं, धर्म भोलापन है, दर्शन परिष्कृति है, अध्यात्म अनुभूति है। घुटने के बल बैठ कर खड़े लोगों की महानता से प्रभावित होना साम्प्रदायिकता है, स्वयं खड़ा होना धर्म है, चलना दर्शन है, मजिल से मंजिल में सफर करना अध्यात्म है।

"आत्म शक्ति का उद्‌बोधन ही प्रकृत मनुष्यत्व है" [६६] मनुष्य होना याने कि अध्यात्म जीना। 'आत्म चेतना' सर्व चेतना के वृक्ष का बीज है। आत्म—चेतना के इस बीज को मानव यदि सर्व—नेह, सर्व प्रेम के जल खाद से अंकुरित कर ले 'स्व' के मानस की धरती पर तो वह मानव ही "सर्व चैतन्यता" के वृक्ष की तरह फैल जाता है.. और इस वृक्ष की सुखद छांव का उपयोग कई घेरे घिरे लोग करते हैं। मानव आज अपनी प्रकृत प्रकृति से ही भटक गया है.. यहां तक कि परिवार से भी संकुचित हो गया है। व्यापकता और संकुचन में थोड़ा सा भेद है। व्यापकता "मेरा नहीं" द्वारा घेरे तोड़ने का नाम है.. तो संकुचन "मेरा ही" द्वारा घेरे तोड़ने का नाम है। व्यापकता मानव को उन्मुक्ति तक ले जाती है.. पर संकुचन मानव को "लघु बंधन मे कस देता है। व्यापकता परमार्थ है, संकुचन स्वार्थ है। "मैं हूं.. तुम हो.. सब हैं.., मैं रहूं.. तुम रहो... सब रहे" यह व्यापकता है। "मैं हूं.. मै रहूं" यह संकुचन है। व्यापकता आत्म शक्ति का उद्‌बोधन है। संकुचन अनात्म शक्ति का प्रदर्शन है।

४. सब से बड़ा देवता 'स्वयं'

भूल जा
भूल जा
भूल जा,
सब कुछ भूल जा तू।
फिर याद आयेगा
खुद को खुद तू!

सब कुछ को भूल जाना पड़ेगा खुद को खुद याद आने के लिए। "व्यापक स्वयं" से बड़ा कोई देवता नहीं है इस व्यापक स्वयं को जगा करके तो देखो। तरशे हुए पत्थरों को भगवान समझने लगते हैं लोग तुम स्वयं को तरश करके तो देखो। भूल जा एषणाओं के त्रय को.. भूल जा वित्तेषणा को, भूल जा पुत्रेषणा को, भूल जा यशेषणा को.. तभी तरश जाएगा तू.. आत्म चेतना की गहराई में डूब जाएगा .. कह उठेगा—

खूब, खूब, खूब
डूबा
स्वयं की गहराई
स्वयं मैने न पाई।

डूब तो इन्सान रे.. इस स्वयं में। बढ़ तो अध्यात्म की ओर.. आप्तता मिल जाएगी तुम्हें। सार्थकता को तू सम्पूर्णता से जिएगा।

अस्तित्वता
चैतन्यता
सार्थकता
इतनी लघु सत्यता
स्वयं को ढूंढता
ब्रह्म गया पा।

५. "अपनत्व की धार"

सामान्य जीवन के दो भाग हैं। एक भौतिक तो दूसरा आध्यात्मिक। सही अर्थों में जीवन जीने के लिए दोनों भागों में संतुलन एक आवश्यकता है। अध्यात्म की इस दृष्टि से परिभाषा इस प्रकार होगी। **"भौतिक वस्तुओं की प्राप्ति के लिए सहज प्रयास और अध**

यात्मिक सत्यों की प्राप्ति के लिए अत्यंत प्रयास ही अध्यात्म है।" आज की दु:खद स्थिति यह है कि जीवन में मानव ने इस परिभाषा को उलट लिया है... वह भौतिकता के लिए अत्यंत प्रयास करता है जबकि अध्यात्मिकता के लिए सहज प्रयास करता है। सीमित के लिए अत्यंत प्रयास की भयानक दृष्टि को सुधारना होगा। मानव को सीमित साम्प्रदायों से उन्मुक्त करके असीमित हेतु असीमित प्रयास के पथ तक लाना होगा।

आध्यात्मिक पुरुष प्राणी हो जाता है जबकि सामान्य लोग हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख आदि। गधा एक सामान्य जाति है.. गाय, बैल एक सामान्य जाति है.. शेर, गीदड़, आदि आदि सभी अलग अलग सामान्य जातियां हैं.. ठीक उसी प्रकार आदमी एक सामान्य जाति है.. गधा, गाय, बैल, शेर, गीदड़, आदि सामान्य जाति के विभाजन इन जाति वालों ने नहीं किए.. आदमी अपनी जाति का हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई आदि में विभाजन करके अध्यात्मिक स्थिति से और अधिक भटक गया है। अध्यात्मिक पुरुष आदमी... और आदमी की सामान्यता के पश्चात प्राणी होता है। वह अपनी चैतन्यता का प्राणी मात्र की चैतन्यता से सामंजस्य कर लेता है। अध्यात्म का आधार यही सामंजस्य तो है। दया, करुणा, ममता, प्रेम, आदि पवित्र भाव क्यों हैं? इसलिए कि चैतन्यता–सामंजस्य है। एक भूखा अपाहिज व्यक्ति एक द्वारे आता है। गृह स्वामिनी सोचती है भूख से तकलीफ होती है, मुझे भी इसे भी.. और वह उसे रोटी दे देती है। "मुझे भी इसे भी" दो चैतन्यताओं का सामंजस्य है। अध्यात्मिक पुरुषों में यह सामंजस्य परम विकसित होता है तभी तो वह हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, यहां तक कि आदमी आदि से उठ कर प्राणी हो जाता है। प्राणी होने का अर्थ यही है कि प्राणी मात्र से उसका चैतन्यता सामंजस्य होता है।

"संघीभूत" चैतन्यता का स्तर ही अध्यात्म है। इस स्तर के पारस (अध्यात्म) को छूकर वापस आने वाला मानव वह सोना हो जाता है जिसका मूल्य आपेक्षिक नहीं वरन शाश्वत होता है। वह महामानव अपने आपका मूल्य स्वयं ही होता है.. उसका एक दिव्य प्रभाव होता है.. वह पेड़–पौधों के प्रति भी उतना ही संवेदनशील होता है जितना मानवों के प्रति.. वह अपने साथ खुशियां, कहकहे, हल्कापन लिए चलता है। स्थल स्थल उन्मुक्ति पूर्वक इसे बाटता है। अपनत्व स्वाभाविक रूप से उसके हर व्यवहार में बहता है। वह एक अपनत्व की धार होता है जिसमें कई कई परिचित अपरिचित स्नान करते हैं। अध्यात्म स्तर का स्पर्ष प्रमाण यही सम सहज अपनत्व होता है। वह "अपने आप में तुष्ट", "समस्त कामनाओं से छूटा" "दु:ख में सम", "सुख में सम" राग भय क्रोध से मुक्त, और "स्वाधीन अंत:करणवाला" होता है। [६७]

एक सहज संवेदन शीलता.. अध्यात्म का लक्षण है। **जिस व्यक्ति के संवेदन आहत नहीं हुए हैं वह अध्यात्म स्तर का छूने के अधिकार के निकट है।** शुद्ध जल का असीमित स्वाद नष्ट कर देते हैं सीमित स्वाद वाले चाय, काफी, कोकाकोला, बियर, आदि आदि। शुद्ध जल का स्वाद संवेदन की अव्याहतता की पहचान है.. आहत संवेदन वाला व्यक्ति शुद्ध जल में असीमित स्वाद न भोग कर एक बद् स्वाद भोगता है। यह बद्स्वाद जल का नहीं है, वरन उस व्यक्ति की अक्षमता का है। तन संवेदन शीलता से कहीं सूक्ष्म होती है विचार संवेदन शीलता.. विचार संवेदन शीलता का शुद्ध जल है स्व–केन्द्रण... इस स्वकेन्द्रण के असीमित रसों से भटक कर मानव पिता, माता, बेटा, पति, पत्नि आदि की चाय काफी और हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई, आदि के कोका और भारतीय, अमेरिकन, पाकिस्तानी, रूसी, चीनी आदि के बियर शराबों से अपने मानस संवेदन बुरी तरह आहत कर लेता है..। इन आहत विचार संवेदनों द्वारा स्वादित संसार लोगों को इतना बद् स्वाद लगता है कि पढ़े लिखे लोग, समझदार कहे जाने वाले लोग तानाशाही को आजादी सा जीते हैं.. जिन्दगी जो मौत भर के लिए जहर होती है उसका जहर पीते जीते हैं.. और बे अर्थ को अर्थ दे कला की संज्ञा देते हैं। आहत मानस संवेदनों की इस व्यवस्था से सहज मानस संवेदनों तक की विपरीत यात्रा आज के युग की एक आवश्यकता है।

अंदर की ओर हमें चलना ही है। स्वकेन्द्रण पथ पर आना ही है। स्वकेन्द्रण ही सर्व सत्य है। "जागते रहो अंदर में, खड़े रहो अंदर में, और चलते रहों अंदर में" [६८] जिस मानव की हर क्रिया अंदर मे ही होने लगती है.. वह बाह्य क्रियाओं के प्रति तटस्थ हो जाता है। बाह्य क्रियाओं के प्रति तटस्थ होकर का तात्पर्य जड़ होकर कदापि नहीं है। बाह्य से तटस्थ होने पर भी वह चैतन्यता, जागरुकता एवं गति की साक्षात प्रतिमा होता है। "गति की साक्षात प्रतिमा" की अध्यात्मिक व्याख्या आवश्यक है।

डॉ.आइंस्टीन मानते है कि प्रकाश की गति से किसी वस्तु को फेकने पर वह वस्तु शक्ति रूप में परिवर्तित हो जाएगी। डॉ.आइंस्टीन की यह मान्यता बचपनी है। प्रकाश की गति आता प्रकाश भी शक्ति समझा जाता है। उनकी मान्यता है कि प्रकाश की गति शाश्वत है.. यथार्थत: प्रकाश की गति शाश्वत नहीं है.. प्रकाश की गति से भी तीव्र गति से यह ब्रह्माण्ड गतित है फिर भी इसमें पदार्थ.. शक्ति आदि का समुचित समन्वय है। ब्रह्माण्ड क्योंकि पूर्ण का पूर्ण गतित है अत: निरपेक्ष होने के कारण अगतित प्रतीत होता है। मानव अध्यात्म स्तर पर गति की साक्षात प्रतिमा होता है। इसका तात्पर्य यह है कि शून्य समय में अनन्त तक गति करता है अविघटित हुए बिना। क्योकि हर पथ वृत्ताकार है.. सरल रेखा भी अनन्त त्रिज्या युक्त वृत है.. अत: मानव वहीं का वहीं रहता है.. अत: मानव की निरपेक्ष गति ही शाश्वत गति है.. इसी में मानव चैतन्यता का निखिल स्वरूप होता है।

अध्यात्म की आत्मा क्या है? अध्यात्म के प्राण क्या हैं? अध्यात्म का तन क्या है? अध्यात्म एक महायज्ञ है। इस महायज्ञ की आत्मा है 'स्वाहा'.. इस महायज्ञ का प्राण है 'इदं न मम'.. इस महायज्ञ का शरीर है 'अग्नि'। स्वाहा याने कि 'स्व' का विसर्जन। स्व का विसर्जन किसके लिए? पर के लिए.. पर में स्व का भाव पैदा होना ही मानवता है। स्व का सम्पूर्ण विसर्जन अध्यात्म की आत्मा है। 'इदं न मम' याने मेरा नही है यह.. अध्यात्म स्तर की देन मेरा से विमुक्त होना है। मेरा से विमुक्ति अध्यात्म का प्राण है। अध्यात्म का क्षेत्र बड़ा व्यापक है। आदमी परम चैतन्य प्राणी हो जाता है इस व्यापकता में.. व्यापकता ही अग्नि है अध्यात्म के महायज्ञ का शरीर। अध्यात्म की आत्मा, प्राण, शरीर हम धारण कर लें तो हम भी अध्यात्म हो जाएंगे। हमें छू कोई भी पावन हो लिया करेगा।

अध्यात्म का एक और पर्याय है "दाग न" याने कि दाग नहीं। आज स्थिति यह है कि दाग को भी लोग दाग नहीं कहते हैं। दाग क्या है यह समझना महत्वपूर्ण है। एक कपड़ा पूरा का पूरा काला है यह दाग है या नहीं? सामान्यत: इसे दाग नहीं समझा जाता पर यथार्थत: यह दाग है और दुनियां का सबसे बड़ा दाग है। उस काले रंग पर अब और कोई दाग नहीं पड़ सकता इस रंग के दाग को यह परम दाग शोषित कर लेता है। इस काले रंग के टुकड़े पर अदाग सफेद ही दाग बन जाता है। ये सम्प्रदाय विशेष विभिन्न रंगों के दाग हैं.. पूर्णत: एक ही रंग में रंगे जाने के कारण ये दाग लगते नहीं हैं.. ये अध्यात्म से महा भटकाव की स्थिति है। अध्यात्म अदागित श्वेत है। अध्यात्म इन सब रंगीनों (अलग–अलग रंगों) पर एक दाग है। यह अध्यात्म का दाग होना जिस दिन मिट जाएगा उस दिन मन्दिर, मसजिद, गुरुद्वारे, गिरजे, आदि आदि मानवता गृह हो जाएंगे।

अध्यात्म का भाव है समस्त प्राणियों की रक्षा एवं उनके हित की भावना रखना। अध्यात्म वह पावनतम मानसिकता है जिसमे पूरे के पूरे विश्व को सुरक्षित, सुव्यवस्थित रखने की क्षमता निहित है। सुबह से सांझ तक का ही तो सफर तय करना है आदमी को.. फिर अपने आप से अध्यात्म से इतना भटकाव क्यों? जग में इतना उलझाव क्यों? खुशियों, गमों में इतना बिखराव क्यों? कितना छोटा सफर है सुबह से सांझ तक का बस! अध्यात्म में आदमी का ठहराव क्यों नहीं? बहुत बड़े इस प्रश्न का छोटा सा उत्तर है– रंग। आदमी रंग गया है.. असहज हो गया है.. केवल तीव्र संवेदनों को ग्रहण करता है। सूक्ष्म सहज संवेदनों से संवेदित होने की अक्षमता ही अध्यात्म की पावनतम मानसिक क्षमता आदमी से छीन लेती है और आदमी असुरक्षित स्वयं को महसूस करने लगता है। असुरक्षा आदमी को बाह्य में कस के बांध देती है।

योग में दो कदम आगे है अध्यात्म। **"योगः चित्तवृत्ति-निरोधः"** चित्त की वृत्तियों का निरोध है योग।[६९] लेकिन इसका अगला कदम है.. **"तदा द्रष्टुः स्वरूपे ऽवस्थानम्"** तब मानव स्वयं को स्वयं देखता है।[७०] **"वृत्तिसारूप्यमितरत्र"** इसके अतिरिक्त अन्य कोई अवस्था नहीं है.. अर्थात अन्य अवस्थाओं में मानव वृत्ति के अनुरूप रहता है या रंगा रहता है.. यहां तक योग और अध्यात्म समानान्तर चलते हैं.. पर इसके बाद अध्यात्म आदमी को अनुभूति रूप में "प्राणी मात्र" कर देता है। मानव का प्राणी मात्र हो जाना ही अध्यात्म है.. यह योग से दो कदम आगे है।

६. "अध्यात्म शत्रु अज्ञान"

अज्ञान ने हमें अध्यात्म से बड़ी दूर पटक दिया है। हम चित्रों के भी चित्रों में बंध कर रह गए हैं। जड़ चैतन्य, प्रतीक–सत्य आदि के विभेद भी हमें ज्ञात नहीं है। राम, कृष्ण, ईसा, गौतम, आदि के चित्र और चरित्र मे विभेद ज्ञान हम खो बैठे हैं। स्वच्छता और पवित्रता में हमें अंतर नहीं मालूम है। एक समय एक मन्दिर के भवन में एक छोटा सा बच्चा जूता पहन कर चला गया.. एक ने, दूसरे ने, तीसरे ने, वह देखा.. वे दौड़े और उसके मां बाप पर बिगड़ने लगे.. "आप ने मंदिर को अपवित्र कर दिया, आपको भवन की पवित्रता का ध्यान रखना चाहिए".. वे मां बाप घबड़ा कर बाहर चले गए.. बच्चे के जूते बाहर उतार अन्दर आए मन्दिर देखा.. मूर्ति के दर्शन किए.. प्रसाद लिया.. पण्डित ने प्रसाद भरपूर दिया क्योंकि उन्होने आरती पात्र में पचास पैसे का सिक्का डाला था। वहीं एक गरीब बच्चा था, उसे केवल चरणामृत दिया गया प्रसाद नहीं। वे सज्जन अपनी तथा बच्चे के साथ जब वापस आ रहे थे तो एक दूसरे पण्डित जी उनके पास चन्दे की रसीद बुक लेकर पहुंच गए.. और बुरी तरह (चन्दा मांगने का यही प्रकार है) चन्दा मांगने लगे। बड़ी मुश्किल से दो रुपए देकर उन सज्जन ने पिण्ड छुड़ाया। पंडित जी ने दो रुपए की रसीद भी न दी। उपरोक्त दुर्घटना हर मन्दिर, मसजिद, गिरजे, गुरुद्वारे, की है कुछ हेर फेर के साथ। पूरी घटना में कहीं भी अध्यात्म नहीं है। जूते पहन कर मन्दिर में जाने से मन्दिर अपवित्र नहीं अस्वच्छ होता है। प्रसाद देने में पक्षपात, जड़ मूर्ति को चैतन्यता का नमन, घिनोने तरीके से चन्दा मांगना, रसीद न देना आदि आदि कर्मो से मन्दिर अपवित्र होता है.. कैसी विडम्बना है अपवित्र लोग पवित्रता के ठेकेदार बने बैठे हैं।

एक अद्वैतवादी मठाधीश ने एक ट्रेन के सफर में चर्चा के दौरान मुझसे पूछा– "क्या आप अपने माता पिता के चित्रों पर पैर रख दे सकते है?" मैने उत्तर दिया– "पैरों से यदि चित्र अस्वच्छ नहीं होता तो पैर रखा जाने पर उन्हें लगने वाला नहीं है। मेरे माता पिता का चित्र केवल उनका प्रतीक है।" वे मठाधीश बहुत रुष्ट हुए.. क्रोध में बोले– "आप अभद्र हैं" मैंने वहीं रखे फिल्मफेयर को नीचे ड़ाल दिया... हेमामालिनी के चित्र पर एक लात मारकर लोगों से पूछा– "क्या यह लात हेमा मालिनी को लगी?" लोगों का उत्तर था– "वो कैसे लगेगी?" मैने कहां– "चित्रों के बदल जाने से सत्य नहीं बदल जाते, मैं नहीं कहता माता–पिता के चित्रों को लात मारनी चाहिए.. उन्हे स्वच्छ रखना चाहिए".. "माता–पिता का चिन्ह हैं वे"... "पर मेरा कहना है कि वे चित्र माता–पिता नहीं हैं.. न हो सकते हैं.. वे माता–पिता को दिए जाने वाले आदर के अपात्र हैं।" उन मठाधीश महोदय ने कटु स्वर में हाथ जोड़कर कहा– "आप तो माता–पिता के चित्र को भी लात मार सकते है! हमें आपसे कुछ नहीं कहना है।" "आपका बहुत बहुत धन्यवाद" कहकर मैने भी हाथ जोड़ दिए थे। **अद्वैतवाद**.. अनुभूति के पश्चात अध्यात्म के सर्वाधिक निकट है। "ब्रह्म का तार सब में हैं.. सबसे जुड़ जाना.. सब हो जाना".. सहज शब्दों में यही अध्यात्म है, यही अद्वैत है। पर आज अद्वैतवाद को भी कितने अज्ञानों ने घेर रखा है.. इसके मठाधीश किस सीमा तक अनाध्यात्मिक हैं।

"हम आत्मा में स्थित होकर आत्मा में आत्मा की उपासना करें। हमारा आधार आत्मा है, मध्य आत्मा है ओर अन्त आत्मा है"[७१].. यह अध्यात्म की ही विवेचना है जो विवेकानन्द ने दी है। स्व–केन्द्रण की ओर यह प्रेरण है। "आत्मा में स्थित" यह वह उच्चतम स्तर है जिसे हमें छूना है.. "आत्मा में आत्मा की उपासना".. हमें सर्वत्रीय होना है। यही तो अध्यात्म की आत्मा.. स्वाहा है। यही तो एक ही एक देखना है।

दो तरह के ही व्यक्ति पाए जाते हैं दुनिया में.. एक योगी दूसरा भोगी। ज्ञान भी दो ही है.. एक बाह्य दूसरा आंतसिक। दुनियां का निर्माण दो से ही हुआ है.. एक "मैं" दूसरा "मैं से भिन्न"। तीसरे परम तत्त्व के विषय में हम इसी सीमा तक आश्वस्त हैं कि "वह हैं".. वह क्या है? यही तो अध्यात्म अनुभूति है.. जो केवल इंगित की जा सकती है, अभिव्यक्त नहीं। योगी और भोगी में एक ही क्रिया का लक्ष्य बदल जाना ही अन्तर पैदा कर देता है। "आपने से भिन्न वस्तु का अभिमान तथा भिन्न वस्तु का ज्ञान एवं अपने से भिन्न का ध्यान हमें भोगी बनाता है। और जो अपने से भिन्न नहीं जिसमें कही भी भेद नहीं उस नित्य प्राप्त का अभिमान तथा उसी का ज्ञान और निरन्तर ध्यान हमें योगी बनाता हैं।" [७२] इस योग में परिपक्व होने पर "आत्म में" की अवस्था हैं जिसे अध्यात्म संज्ञा दी गई है।

७. अप्रयास प्रेम अप्रयास कर्म

हम दुनियां में सप्रयास प्रेम नहीं कर सकते हैं। दुनियां के एक व्यक्ति से भी सप्रयास प्रेम नहीं किया जा सकता है फिर पूरी दुनियां की बात ही दूर है। **पूरे विश्व से अप्रयास प्रेम ही अध्यात्म है।** इतना कठिन कार्य भी सहज हो जाना विश्व की सबसे बड़ी उपलब्धि ा हैं । यह उपलब्धि अध्यात्म पुरुष को प्राप्त रहती है। अध्यात्म पुरुष इस उपलब्धि से ओत प्रोत होता है। इस ओत–प्रोतता का पूर्व चरण है प्रज्ञा। प्रेम पथ में "कठिनता यही है कि प्रज्ञा प्राप्त करने पर ही प्रेम सुलभ होता हैं। जब ज्ञान शक्ति विषय वृत्ति से उन्मुक्त हो जाती है तभी वह प्रज्ञा में परिणात होती है।" [७३]

स्वयं में स्वयं डूब जाना मिट जाना है। मानव नगण्य होकर महामानव हो जाता है यह एक दिव्य महासत्य है जो अध्यात्म से ही प्राप्त होता है। परम मेधा प्राप्त कर के मानव परम विनय शील हो जाता है। अपनी महत्तम महत्ता जानने के बाद मानव में महत्ता के प्रति कोई मोह नहीं रह जाता है। तब दूसरे उसे जो महत्ता देते हैं वह भी दूसरों के लिए ही होती है। परम विनय शील के लिए केवल एक ही कार्य रहता है कि पवित्रता के महासागर में तैरता सा दौड़ता हुआ बहता रहे.. यह परम सक्रियावस्था है। **उपकार करने में जब मानव उपकृत होने लगे तो समझना चाहिए कि अध्यात्म उसने छुआ है।** "दिव्य स्वभाव वाले मनुष्यों नें उपदेशो द्वारा परिष्कृत, सुधारे गए उत्तम कुल जाल, जल की तरह मृदु, रसमय विनय भाव को निकट जा जा कर प्राप्त कर ही लिया।" [७४]

आत्मा ही सर्व सत्य है, इस आत्मा तक पहुंचना ही इसके आनंद का पान करना है। आत्मा यह लबालब आनंद भरी है। **"आत्मा में आत्मा सा" ही स्व–केन्द्रण है, अध्यात्म है।** आत्मा में आत्मा सा ही नहीं बल्कि आत्मा में आत्मा ही स्वकेन्द्रण है। स्वकेन्द्रण होने पर शरीर आत्मा की अभेदता ज्ञात होती है। आत्मा ने शरीर को आच्छन्न किया हुआ है.. आत्माच्छादित ये शरीर आत्मा की तुलना में समाप्त हो जाता है। आत्मा बरसा रही है अपनी पूर्णता। इस पूर्णता से आप्लावित हो हमें अध्यात्मिक होना है। "मेरी आत्मा धर्ममेघ है। मेरे लिए और मेरे जैसे सब चातकों के लिए स्वाति नक्षत्र की बूंद यही है। इसमें वृष्टि की, बरस जाने की उत्सुकता उमड़ रही है। मनुष्य अपने स्वरूप को भूला हुआ है। प्रत्येक आत्मा राम है, कृष्ण है, बुद्ध है, दयानन्द है।" [७५] इतना ही नहीं हर आत्मा ईसा है मुहम्मद है, नानक है, महावीर है। कितनी शोचनीय अवस्था हो गई है आज अध्यात्म की.. कि पैगम्बर आत्मा आज दागी जा रही है। इस आत्मा पर राम, कृष्ण का नाम दाग उसे हिन्दू, ईसा का नाम दाग ईसाई, हजरत मुहम्मद का नाम दाग मुसलमान आदि बना दिया जाता है। जानवरों के झुण्डों पर अपने अपने चरवाहे के दाग होते हैं जो तपते लोहे से दागे जाते हैं। उफ! ये कर्म बंद होने चाहिएं.. बाईबिल, कुरान, वेद, ग्रंथ साहब, पिट्टक आदि को दागने वाले तपते लोहे के विकृत पीड़ादायक रूपों में मानवता को और पीड़ादायक बनने से रोकना होगा। इनके द्वारा दागित लोगों के दाग मिटाने होगें। इन सम्प्रदायों को अध्यात्म के स्तर तक व्यापक करना ही होगा।

हम विश्व में अपना तथा सबका मूल्याकंन करते हैं। अपना मूल्यांकन एक स्थिति है, सबका मूल्याकंन दूसरी स्थिति है, और ब्रह्म का मूल्याकंन तीसरी स्थिति है। ये तीन स्थितियां पाना याने कि मूल्याकंन का सतह मात्र तक रह जाना है। अध्यात्म पथ हमें अपने आपका, जग का, एवं ब्रह्म का गहन मूल्याकंन करना सिखाता है। "संसार के तुम्हारे सगे सम्बन्धी व शत्रु मित्रों की तुम्हारी मान्यता तो सरफेस वैल्यूएशन है। उनके प्रत्यक्ष मूल्य को देखो वे वही हैं जैसे तुमने अब तक विश्वास करके रखे थे। किन्तु अब यदि तुम गहराई से देखो तो तुम्हे उनके साथ अपनी एकता का पता चलेगा।" [७६] सब के साथ एकता की पहचान है। अपनी पहचान जान लेने पर आदमी सबका हो जाता है। सबका हो जाने पर खुद का कहां रह जाता है? **सबके सब में खुद हो जाना या खुद में सबके सब हो जाना ही अध्यात्म है।**

अध्यात्म तक पहुंचने की चार सीड़ियां हैं। एक **'हेय'** दूसरी **'हेय हेतु'** तीसरी **'हानोपाय'** और चौथी **'हान'**। हेय है 'अलगाव' या 'अपने आप से अतिरिक्त बंधन' या 'त्याज्य' क्या है? हेय हेतु है 'त्याज्य का कारण' या 'अतिरिक्त बंधन का कारण'। हेय हेतु हटा देने से हेय भी निवारित हो जाता है। हानोपाय है 'बंधन रहितता' के या 'अलगाव' के या 'अपने आप से बंधन' के कारण। और हान है 'अपने आप में' या 'अध्यात्म' जो कि हानोपाय का निष्कर्ष है। हेय हेतु का बहुत बड़ा रूप यह है कि "हम दूसरों की दृष्टि में बड़े, भले बनना चाहते हैं.. हमारी यह अभिलाषा एक सामाजिक बुराई है और सब धर्मो के लिए अभिशाप रूप है" [७७] हानोपाय है सांसारिक प्रेम और हान है ईश्वर का अनुभव "सांसारिक प्रेम का उचित प्रयोग आपको ईश्वर का अनुभव कराता है।" [७८]

अध्यात्म परम सक्रियता है। अक्रियता का लेश मात्र भी अनाध्यात्म है। सप्रयास सक्रियता अध्यात्म का अभ्यास है। सप्रयास सक्रियता में अक्रियता आवश्यक है। सहज सक्रियता ही परम सक्रियता है। सहज सक्रिय मानव एक जमदग्नि याने कि चलती फिरती आग होता है। "वह दूरदर्शी महान बन्धुत्व को प्ररित करता हुआ ठहरा हुआ ही बहता सा प्रतीत होता है" [७९] "ठहरा हुआ ही बहता सा" सहज सक्रियता का उत्कृष्ठ उदाहरण है। सप्रयास सक्रियता में थकान आवश्यक है। अप्रयास सक्रियता का लक्षण है बहता सा। अनथक महान बन्धुत्व को ही प्रेरित किया जा सकता है। अध्यात्म छू लेने पर ही मानव महान बन्धुत्व (विश्व बन्धुत्व) ही नहीं वरन महान आत्मत्व

की धारा को समर्पित हो जाता है।

संसार के समस्त प्राणियों की वज्ञा करना श्रेष्ठ धर्म है। प्रज्ञा जब सत्य से आर्पूत हो जाती है.. और इस आर्पूत प्रज्ञा से मानव अस्तित्व ओत प्रोत हो जाता है.. तो एक तरह से मानव के भौतिक, मानसिक, वैज्ञानिक अस्तित्व का नवीनीकरण होता है.. ये तन की कोशिकाएं नवीन, परिशुद्ध, परिमार्जित हो जाती हैं कि दिव्य प्रज्ञा को धार ले। संपूर्णता से प्रज्ञामय हो जाने का अर्थ है विशालता..। विशालता का सागर मानव. . हर किसी के साथ सहजत: जुड़ जाता है। "समुद्र के पानी की भांति जिनकी प्रज्ञा पूर्ण है वे दूसरे प्राणियों की अवज्ञा नहीं करते। यह आर्य धर्म की रीति है।" [८०]

"आदमी अगर प्रमाणित रूप से कुछ जान सकता है तो सिर्फ आदमी को। और अगर आदमी को जान जान ले तो आदमी इतनी बड़ी इकाई है कि आदमी को जितना जानता चला जाए उतनी नई नई दिशांए आदमी के भीतर से खुलती हैं। और उन दिशाओं से वहां तक की भी यात्रा कर सकता है जहां हमें नहीं दिखाई पड़ता कि आदमी जुड़ा हुआ है" [८१] स्वकेन्द्रण से हर दिशि सत्यों का विकास होता है। आदमी स्वयं को बूझकर सब बूझ लेता है। स्वकेन्द्रण की लघुतम इकाई समस्त सत्यों के सत्य महत्तम को धारण किए हुए है। सत्यों के सत्य महत्तम को छूना ही तो अध्यात्म है। इस अध्यात्म को एक क्षण भर जीना जीवन को अक्षण कर देता है। अक्षण जीवन वह जीवन है जहां मानव समयजित हो जाता है। 'समयजित' क्षणों की आपेक्षिकता से परे होता है। समयजित ही नहीं वह देशजीत भी होता है। वह समस्त आयामों से बड़ा हो जाता है स्वयं का आयाम पाकर। स्वयं का एक आयाम इतना अधिक सर्वतो मुख है कि बाकी हर आयाम इसमें ही सिमट कर मिट जाता है।

सर्वतोमुख मानव भावमुख होकर रहता है। "भाव मुख" स्व का परम विकास है। स्व–विकास द्वारा स्व का नष्टीकरण है। स्व के नष्टीकरण के साथ ही साथ 'पर–स्व' की प्राप्ति ही "भाव मुख" है। आदमी जो घेरों मे सीमित हो जाता है वह 'अभाव मुख' हो जाता है। अभाव मुख अर्पूणता का द्योतक है। 'अभाव मुख' हजार हजार आंखो वाला, हजार हजार पावों वाला, हजार हजार हाथों वाला पर केवल अपने लिए ही होता है। एक आदमी हजार पावों से एक दिशा में दौड़ कर, एक चीज पर हजार हाथों से झपटेगा, हजार आंखों हजार चीजे देखेगा, उनकी लालसा करेगा.. उसकी बड़ी दयनीय अवस्था होगी। आज सामान्य मानव की यही अवस्था है उसकी इच्छाओं के सबल हाथ उसके बस में नहीं, कामनाओं के सशक्त पांव उसके बस में नहीं.. लालसा की आंखे उसके वश में नहीं परिमाणामत: वह उद्विग्न है; अभाव मुख है। भाव मुख शब्द का अर्थ हैं कि 'क्षुद्र अहं' का लोप करके सभी अवस्थाओं में 'विराट अहं' अर्थात् इश्वरेच्छा के साथ मन को एकीभूत करते हुए लोक कल्याण साधन करना।" [८२]

अध्यात्म का अपना एक आनंद है। "आत्मा में" लीन व्यक्ति इसी आनंद में लीन रहता है। यह लवनीलता ही मानव को वासना से विमुक्त कर देती है। "विषय समाप्त हो जाते हैं निराहार रहने से पर रस नहीं जाता रस जाता है परम को देखने से" [८३] इस रस के निवर्तन का कारण है एक सहज, सतत, सम भावानन्द की प्राप्ति। मानव इस एक ही भाव में बहने लगता है.. इस भाव भूमि पर जगत में रहते हुए भी व्यक्ति के जागतिक बंधन नष्टीकरण सीमा तक शिथिल हो जाते हैं। बंधनों की अत्याधिक शिथिलता मानव शक्ति का अत्यधिक विकास कर देती है। तभी तो अध्यात्मिक पुरुष अनाहत कर्ममय होता है। हत नहीं है जिसका 'कर्म सातत्य' वह है अनाहत कर्मा। अनाहत–कर्मा कर्मयोगी का दूसरा नाम है।

"एकात्म एक ही है सब" [८४] इस एकात्मता को पहचानना, जीना ही अध्यात्म है। अध्यात्म में लक्ष्य और पथ में उत्तरोत्तर सबंध हैं। पहले पथ पर सप्रयास चलना पड़ता है यह उन्नति की ओर सामान्यावस्था से अग्रसर होने की अवस्था है.. फिर लक्ष्य मिलता है। उसके पश्चात मानव अप्रयास ही पथ पर चलता है। पथ है 'सर्वहित' लक्ष्य है 'आत्मा में'।

"दो अभयदान सबको तुम.. हों सभी शांतिमय सुखमय, है प्राणी मात्र को मुझसे कुछ भी न कहीं कोई भय पृथ्वी, पाताल, गगन, में मैं ही आत्मा चिर संस्थित।" [८५]

"चिर संस्थित आत्मा" होना ही अध्यात्म है। 'चिर संस्थित आत्मा' के अस्तित्व की व्यापकता से कोई भी प्राणी अछूता नहीं रह पाता है। धरती, अकाश, पाताल उसके सहज संस्थान होते है। सहज विचरण उसका स्वभाव होता है.. अपने सहज महाप्रयाण की अवस्था में वह आत्मा यहां वहां सर्वहित साधने में संलग्न रहती है। सर्वहित का आकाश बड़ा ही व्यापक हैं। इतना विशाल लक्ष्य सहज धरने वाला महामानव छोटे छोटे "अहमों" की सीमाओं में कभी भी नहीं बंध सकता है। वह तो इन सीमाओं से कहीं परे रहता है। वह पिंजरे का पंछी नहीं वरन गगन का विहग होता है। गगन ही उसका पिंजरा होता है बाकी सब पिंजरे उसे छोटे पड़ जाते हैं।

सुख हेतु न गेह बनाओ, किस घर में समा सकोगे?
तुम हो महान, फिर कैसे पिंजरे के विहग बनोगे?" [८६]

अध्यात्म ही वह शक्ति स्तर है जिसे छूते ही "एक मानव" अनेक हो जाता है। एक से अनेक होने का अर्थ विभाजित हो जाना नहीं है। यह अनेकता "परम एक" होने के अर्थ में है। अनेकों में अपनी एका का समरूपीय विकास ही अनेक होना है। एक ही बहुत हो जाता है। सृष्टि का आरंभ एक के बहुत होने से ही हुआ है इसकी अनुभूति अध्यात्म है। अध्यात्म पुरुष क्योकि जग में रहता है.. इसलिए कभी कभी कुछ तीव्र प्रभाओं से प्रभावित हो जाता है.. ऐसे समय में उसके पास अध्यात्म के शक्ति स्तर तक पहुंचने का पथ रहता है.. वह कुछ समय के लिए जग से टूट एकाकी साधक हो जाता है.. उन प्रभावों का नष्टीकरण क्रमश: होता है वह फिर शक्ति स्तर छू.. जग में लौट आता है आनंद बांटने के लिए।

८. "पूर्णांक मानव-शांतात्मा"

पूर्णता के स्तर पर ही यथार्थ ज्ञान होता है। "आत्मा सा हर आत्मा" ही यथार्थता है। रूप, रस, गंध, स्पर्ष, श्रवण आदि द्वारा हम जगत में सबंधित होते हैं.. पर ये सबंध ही तो हम नहीं हैं..ये तो हमारी ओर इंगन हैं और जगत की ओर भी इंगन हैं। इंगन यथार्थता के प्रमाण हैं पर यथार्थता नहीं हैं। इन इंगनों पर रुक जाना इन्हे यथार्थ मान लेना इन्हे ही अपना अस्तित्व मान लेना अध्यात्म से भटकाव है। इन इंगनों से आगे तर्कणा है जो इंगनों में संबंध जोड़ती है.. तथा इंगनों को समूहों में विभक्त कर उन्हें एक विशिष्ट संज्ञा देती है.. ऐसे ऐसे कई संज्ञितों के द्वारा ही ज्ञान के जगत का निर्माण होता है.. इस ज्ञान के जगत से भी परे है यथार्थता। जो संबंध व तर्क संगत है वही यथार्थ है। यथार्थता का स्वरूप न तो इंद्रियों को प्राप्त होता है ओर न ही अवबोध को। वह केवल पूर्ण आत्मा को ही प्राप्त होता है" [८७] पूर्ण आत्मा यथार्थता के स्वरूप को प्राप्त कर सत्य हो जाता है। उसकी हर क्रिया शाश्वत लय से परिपूर्ण होती है.. वह नन्हें नन्हें घेरों में भी व्यापकता के इंगन पहचानता है.. इन घेरों से परे रहता है.. इनमें जीते हुए भी! घेरे अपनी जगह रहते है.. वह अपनी जगह.. उसके लिए घेरे महत्वहीन रहते हैं। हर पल हर स्थल वह सामान्य से परे परम सामान्य होता है। परम सामान्यता को ही प्लेटो ने आदर्श की संज्ञा दी है। परम सामान्य वह अध्यात्म पुरुष कई कई सामान्य पुरुषों में अंश अंश सत्य होता है। उस परम सामान्य की सत्यांशता तक सामान्य पुरुषों से परस्पर प्रीति होती है।

अध्यात्म की व्याख्या अनाध्यात्म के बिना हमेशा ही अधूरी रहेगी। अनाध्यात्म क्या है? इसका मोटा सा उत्तर तो यह है जो अध यात्म नहीं है। पर यह उत्तर काफी नहीं है। अध्यात्म है आत्मा में.. अनाध्यात्म हैं अनात्मा में यह "अनात्मा" यथार्थत: कोई तत्त्व नहीं है। तत्त्व हैं आत्मा जो स्वतंत्र है.. अस्तित्वीय है। यह आत्मा स्वतंत्रता से परतंत्रता में बंध जाती है.. यही अनात्मा है। यह परतंत्रता में क्यों बंध जाती है? यह एक दर्शन का मौलिक प्रश्न है। इस गहन प्रश्न का उत्तर छोटी सी कुछ भौतिक घटनाएं देती हैं। टाईफाइड का मरीज रोटी को नुकसान देह जानने पर भी रोटी की लालसा क्यों रखता है? आदमी सिगरेट, शराब, क्यों पीता है? पीता है तो छोड़ना चाहकर भी क्यों नहीं छोड़ता है? ये भौतिक स्वतंत्रताओं के हनन हैं। बिल्कुल इसी तरह आदमी अपनी मूल स्वतंत्रता का हनन करता है। और "आत्महना" हो जाता है। "घोर अन्धकार युक्त एक लोक है जो निर्धारित है उन सब लोगों के लिए जो कि आत्म हना हैं।" [८८] अनाध्यात्मिक आदमी स्थल स्थल होता है। कई कई स्वतंत्र कर्मो को गलत रूप में करके आदमी परतंत्र हो जाता है।

मानव शून्य नहीं होता है। मानव पूर्णांक है। मानव हमेशा ही पूर्णांक है। यह पूर्णांक दो तत्वों से मिलकर बना है। मानव का गणित सूत्र है अ + ब = १। 'अ'... अध्यात्म कर्म है 'ब' आत्म हना कर्म। जब 'ब' स्वरूप और प्रभाव में शून्य हो जाएंगे तो यही सूत्र हो जाएगा अ = १। यही अध्यात्म है। इस अ +ब = १ गणित सूत्र के कई संयोग हैं यथा ०.०१ (अ) + .११ (ब) = १ से लेकर . ११ (अ) + .०१ (ब) तक तथा इससे भी कम..। इन संयोगों के हिसाब से जीव श्रेणीयां हैं। यदि हम एक कोशीय अमीबा से प्रारंभ करें तो उसमें आत्महना कर्म सर्वाधिक व्यक्त है, अध्यात्म कर्म न्यूनतम है। वह केवल शोषण करता है और केवल शोषणानुसार विकसित होता है। इसके पश्चात आत्म हना कर्मों का क्रमिक ह्रास पेड़, पौधें, कीट पंतगों, पक्षियों, पशुओं आदि से मनुष्य तक होता चला गया है। मनुष्यों में भी आत्महना कर्मों अध्यात्म कर्मो के कमाधिक संयोग की कई कई श्रेणियां हैं। सर्वोच्यावस्थ है– १ (अ) + ० (ब) = १। अध्यात्म कर्मो मात्र का पूर्णांक हो जाना तथा रहना भी अध्यात्म है।

अध्यात्म पुरुष खुद को दुनियां में अंश अंश बांट देता है। सहजत: दुनियां में इत उत सर्वत्र बंट कर वह मिटता नहीं वरन व्यापक ही होता है।

खुद को बांटकर पूरी की पूरी दुनियां में
मिटा नहीं हूं वरन दुनियां हो गया हूं मैं।

दुनियां हो जाना ही अध्यात्म है। दुनियां हो जाना ही प्राणी होना है। मानव का चरम विकास यही तो है। इस चरम विकास के लिए अमर स्रोत है वह मानव के भीतर है।

मानव बाहर दूर दूर तक भटकता है वह ढूढ़ने के लिए जो उसके भीतर है। बाहर उसे कुछ भी नहीं मिलता है भटकने के सिवाय। "हजारों तरह के देवाताओं का पूजना धर्म नहीं, पीर, पैगम्बरों के पास स्त्रियों को भेजना धर्म नहीं, लम्बे लम्बे तिलक लगाना भी धर्म नहीं, गोमुखी में हाथ डालकर भगवान को बहकाना भी धर्म नहीं, धर्म शिवाले में नहीं, धर्म गंगा में नहीं मंदिर में नहीं, धर्म–पुस्तकों में नहीं हृदय के भीतर है।" [८९]

एक बहुत बड़ा मठाधीश था। हजारों लोग मठ में आते थे। उसे शीश झुकाते थे। मठ की पूरी व्यवस्था वह करता था। एक दिवस वह मठाधीश अंधा हो गया। उसने ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो कोई भी उसकी आंखे ठीक कर देगा उसे वह मठाधीश का पद दे देगा। एक अध्यात्म पुरुष आए उन्होनें उसकी आंखे ठीक कर दी। मठाधीश का पद उन अध्यात्म पुरुष को मिल गया.. वे अंधे हो गए।

जो कोई भी मठाधीश है.. धर्म बेचने का खोटा धंधा करता है वह अंधा है.. धर्म भी भला कोई बेचने की चीज है? धर्म को बेचना सबसे बड़ा पाप है। धर्म खरीदना उससे भी बड़ा पाप है। इस भयावह अंधेपन का इलाज ही अध्यात्म है। अध्यात्म आंख मिल जाने पर न तो मानव धर्म बेचता है, न खरीदता है.. वह तो बस शाश्वत जीता है.. अपना अध्यात्म लुटाता है।

अध्यात्म कोई अस्थाई अवस्था नहीं है.. वरन यह तो स्थाई अवस्था है। अपने आप में मानव का चले जाना अध्यात्म नहीं है। अपने आप में मानव कई बार चला जाता है पर यह अस्थाई दौर है। इस अस्थाई दौर को स्थाई बना लेना अध्यात्म है। जब मानव सहजत: सदा

अपने आप में रहता है तो ही वह "आत्म में" कहलाता है। "जब चित्त की विक्षिप्त और एकाग्र भूमि सर्वथा निरुद्ध भूमि में बदल दी जाए, जब यह बिना किसी साधन के निरुद्ध रहने लगे तब ऐसी अवस्था में जो पुरुष का अपने स्वरूप में स्थित हो जाना है वही "स्वरूप स्थिति" है। स्वरूप स्थिति वाले की पुन: इतर (व्युत्थान) स्थिति कहना पूरी पूरी भूल है, क्योंकि स्वरूप स्थिति स्वाभाविक स्थिति है, वह बदल नहीं सकती, और जब तक वह स्वाभाविक नहीं तब तक वह स्वरूप स्थिति नहीं कहला सकती।" [१०] स्वरूप स्थिति ही अध्यात्म है.. इस स्थिति में क्योंकि कर्ता केवल ऋत कर्म करता है एवं उसके समस्त कर्म प्राणियों के कल्याणार्थ होते हैं अत: उसे किए गए कर्मो की प्रतीति भी नहीं होती.. वह सहजत: ऋत होता है, सहजत: कल्याणमय होता है।

"आत्म में" का करीब करीब यथार्थ वाची शब्द है "ब्रह्म में"। 'ब्रह्म में ब्रह्म सा' उसकी संज्ञा है... जिसने आत्मा की समिधा ब्रह्म अग्नि को समर्पित कर दी है। "ब्रह्म में ब्रह्म सा" प्रज्ञा के ऋतंभरा होने की अवस्था में अनुभूत होती है। पर यह अनुभूति अपूर्ण ही रहती है यदि उसे ब्रह्म के अशीर्वाद से संयुक्ति नहीं मिलती। ब्रह्म का सबसे बड़ा आशीष है प्राणी मात्र का कल्याण और यह आशीष सत्य होता है तब... जब..

"हे प्रकाश मय परमात्मन! यदि मैं तू हो जाऊं और तू मैं हो जाए तो तेरा आशीष याने समस्त प्राणियों के कल्याण का संकल्प इस विश्व में सत् हो जाए" [११] यह परमावस्था ही अध्यात्म है।

इस परमावस्था की छोटी छोटी सी झलकों छोटे छोटे से आभासों को बड़े बड़े देवता, महापुरुष मान लोग अंधे होकर पूजे जा रहे हैं और स्वयं को इससे और दूर लिए चले जा रहे हैं। इस मानव भटकाव को पथ देना है। मानव जाति को तिमिराच्छिन्न अज्ञान से मुक्त करना है। सबसे बड़ी बात हमें अध्यात्म को अध्यात्म रूप ही देना है।

कामना मनुष्य को बांधती है। कामना का मोटा सा अर्थ किया जा सकता है काम ना। काम ना याने कि कार्य नहीं। जिस व्यक्ति का उसने कोई काम ही निर्धारित नहीं किया तो वह व्यक्ति जो कुछ चाहता है वह होती है कामना। सतत आप्त कर्म व्यक्ति को कामनाओं से बाहर कर देते हैं। कामनाओं से बाहर हो जाने पर व्यक्ति परम अर्न्तमुखी हो जाता है। अर्न्तमुखी होने की अन्तिम उपलब्धि है अध्यात्म याने कि आत्मा में।

"जो कामनाओं से रहित है, जो कामनाओं से बाहर चला गया है, कि जिसकी कामनाएं पूरी हो गई है या जिसको केवल आत्मा की ही भावना है, उनके प्राण नहीं निकलते हैं वह ब्रह्म ही हुआ ब्रह्म को पहुचंता है।" [१२]

परोक्ष अपरोक्ष रूप मे आदमी "अध्यात्म" की ही चाहना करता है। यह अलग बात है कि इस चाहना में वह छोटी छोटी अन्य "चाहनाओं" पर रुक जाता है। अन्य चाहनाओं पर रुक जाना एक तरह से आदमी का गुम जाना है।

गुमा हुआ है हर आदमी जिसकी तलाश में
वह महामणि अरे यह 'मैं' ही तो है।

इस 'मैं' की महामणि को पाने के लिए आदमी को "चाहनाओं" के छोटे छोटे बंधनों को क्रमश: तोड़ना होगा। क्रमश: भीतर की ओर लय होना होगा।

"बुद्धिमान वाणी को मन में लय करे मन को ज्ञानात्मा (बुद्धि) में लय करे, बुद्धि को महानात्मा में लय करे ओर उस महानात्मा को शान्तात्मा में लय करे" [१३]

यह शान्तात्मा में लय हो जाना ही अध्यात्म है। जहां सब लहरें समाप्त हो जाती है.. निर्मलता, स्थिरता, समता, सहजता जहां स्वत: स्फूर्त रहती है.. वहां है "अध्यात्म" वही है अध्यात्म।

१. "गूंगे को गुड़"

अध्यात्म पर एक बहुत बड़ा प्रश्न है अध्यात्म अनुभूतियां। अध्यात्म के विषय को बहुत बड़ा एक उत्तर है अध्यात्म अनुभूतियां। अनुभूतियां शब्द कुछ ठीक नहीं है। ठीक शब्द है "अनुभूति" पर क्योंकि अनुभूति के कई कई आयाम हैं तथा अभिव्यक्ति उसके समकक्ष नहीं. . इसलिए अनुभूतियां शब्द का उपयोग किया है। अभिव्यक्ति और सामान्य अनुभव के बीच में भी बहुत बड़ी खाई है। ठंड, गर्मी, भूख, प्यास आदि भौतिक लगना हम सही सही अनुभव करते हैं पर सही सही अभिव्यक्त नहीं कर सकते हैं। भूख, ठंड, गर्मी, सर्दी भले ही हम अभिव्यक्त न कर पाते हैं.. सही सही समझ तो जाते हैं आसानी से.. क्योंकि ये अनुभव हमारे भोगे हुए हैं। एक अत्यधिक शीत प्रदेश के निवासी ने आम कभी नहीं देखा.. उसे यह समझाया जा सकता है कि आम कैसा होता है, उसे आम का स्वाद कैसा होता है यह बिना आम खिलाए समझाना और उसका पूर्णत: समझ जाना असंभव है। "अध्यात्म अनुभव" के साथ यही बात लागू होती है। आम का स्वाद सामान्य अनुभव है.. वह समझा पाना अज्ञ व्यक्ति को अंसभव है.. अध्यात्म अनुभव दिव्य अनुभव है वह समझ पाना किसी को भला कैसे संभव हो सकता है? "अध्यात्म अनुभूति" जिसने अनुभूत की वह तो इसे सहजत: समझ सकता है.. पर जिसे यह अनुभव नहीं है उसे समझाना आकाश को तकिए सा लपेट लेना है। आध्यात्मिक अनुभूति पर सबसे बड़ा प्रश्न उन्होनें खड़ा किया है जिन्होंने इसे अनुभूत नहीं किया। उत्तर इस प्रश्न का है पर प्रश्नकर्ता की समझ से बाहर है। कुएं के मेंढक द्वारा सागर समझने के प्रयास वाली ही बात है यह।

व्यापकतत्व की अनुभूति में स्वाभाविक हैं मानव बहुत संज्ञाओं का उपयोग करे । यहां से वहां तक .. प्रदर्शित करने का एक पथ है.. यह भी.. वह भी.. वह भी और वह भी वही है।

"वह ही अग्नि है, वह सूर्य है, वह वायु है, वह चन्द्रमा है, वह शुक्र है, वह ब्रह्म है, वह जल है, वह प्रजापति है।" [१४]

वह सब कुछ है, इत् उत् सर्वत्र विराट है। इसको ही दूसरे शब्दों द्वारा ऋषि ने अभिव्यक्त किया है ऊपर। शाब्दिक अर्थ टुकड़े टुकड़े होने पर भी भावात्मक अर्थ अखिल एक के संदर्भ में ही है। यह उसकी अनुभूति की अति निकट अभिव्यक्ति है। इसी को कुछ अन्य शब्दों में अन्य स्थल पर कहा है।

"वह धाता है, वह विधाता है, वही वायु वही आकाश में उठा मेघ है।" [१५]

"वही अर्यमा, वही रुद्र और महादेव है" [१६]

"वही अग्नि, सूत्र और महायम है" [१७]

आदि से अंत तक उस का फैलाव है। इस अभिव्यक्ति और ऊपर की अभिव्यक्ति में थोड़ा सा ही विभेद है। दोनों का उद्गम एक ही अध्यात्म अनुभूति है। "उसका केन्द्र तो सर्वत्र है पर परिधि कहीं नहीं" –किसी विचारक के इस कथन में भी उसके आदि से अंत तक के फैलाव का सूत्र रूप में विवरण है। **सर्व केन्द्रीय सर्व परिधीय भी होता है।**

२. "अध्यात्म गणित"

आज अध्यात्म अनुभूति को गणित में आंकने के प्रयास हो रहे हैं। हर कुछ की कसौटी गणित माना जा रहा है। सामाजिक विज्ञान, धर्म विज्ञान, राजनीति विज्ञान, दर्शन विज्ञान और अनुभूति विज्ञान.. लोगों के मस्तिक में विज्ञान का एक पागलपन है। विज्ञान का शुद्धतम सरलतम रूप गणित को माना जाता है। लेकिन यह गणित कसौटी बड़ी थोथी है.. बड़ी भ्रांत है.. बड़ी झूठ हैं।

एक + एक = दो का सामान्य सूत्र भी निरपेक्ष रूप में सिद्ध नहीं किया जा सकता है। उसके लिए भी किसी वस्तु का आधार लेना आवश्यक है।

गणित का मूल आधार है 'एक' गणित की भौतिक इकाई एक अपने आप में बड़ा विकृत सत्य है पर लोग, वैज्ञानिक आंख मूंदकर इस व्यवहारिक सत्य के आधार पर बड़े बड़े शाश्वत सत्यों की घोषणा किए जा रहे हैं.. आज समय आ गया है कि गणित को नए सिरे से गढ़ा जाए.. गणित के 'एक' की असत्यता का पर्दाफाश निम्न उदाहरण से होता है–

एक से कम किसी भी अनन्त श्रेणी को लिया जाए– १÷३ + १÷६ + १÷९... अनन्तता तक। आज का वैज्ञानिक इस श्रेणी का योग बताने का दम भरता है और उस योग के नियम से लोगों को चमत्कृत कर देता है.. पर दु:ख है वह छोटा सा सत्य नहीं समझता। यदि १÷२ + १÷६... की श्रेणी अनन्त तक जाती है तो इसका सीधा सा अर्थ है कि इसमें अनन्त एकांक हैं.. याने कि 'एक' जिसे एक कहा जाता है अनन्त 'एको' का योग है जो शून्य से इस तक फैले हुए है और यहां गणित पूर्ण नग्न हो जाता है, जब वह एक + एक = दो कहता है इस कथन का यथार्थ होता है एक अनन्तता + एक अनन्तता = दो अनन्ता। "दो अनन्तता" सत्य से महत्तम भटकाव है। पर वैज्ञानिक अनन्त अनन्तता की महानतम भूल तक बिना भूल को समझे भटकता है।

केवल अंक गणित का एकांक ही नहीं वरन रेखा गणित की मूल इकाई बिन्दु से रेखा, रेखा से तल, तल से आयतन की पूरी की पूरी गणना एवं परिभाषाएं विसंगतियों से भरी हैं। मोटाई, लम्बाई, चौड़ाई रहित काल्पनिक अस्तित्व बिन्दु है.. अनन्त बिन्दु रेखा है अनन्त रेखाएं तल और अनन्त तल एक आयतन है। इसका अगला कदम अनन्त आयतन एक "नरन" हैं। और अनन्त 'नरन' फलाना है.. इस तरह एक भ्रामक अनन्त सिलसिले को जन्म मिलता है। इन समस्त भ्रमों का कारण है गणित का यथार्थ विज्ञान न होकर व्यवहार विज्ञान होना।

"एक" और "अनन्त" की सही परिभाषाओं का ही अभाव गणित में नहीं वरन ऋण की प्रक्रिया भी उतनी ही भ्रामक है। एक – आध ॥ = आधा गणितीय सत्य नहीं है, शाश्वत सत्य नहीं है.. वरन केवल व्यवहार सत्य है। इसी तरह उपरोक्त एक को (अनन्त एकांकों से निर्मित एक) परिभाषा अनुसार व्यवहार रूप में ही ऋण सम्भव है। ऋण दो, ऋण चार, ऋण एक आदि असंभव मान्यताएं काल्पनिक मान्यताएं गणित का एक आधार है। सच! गणितज्ञों, वैज्ञानिकों की नासमझी पर बड़ी दया आती है। इस व्यवहार गणित को शुद्ध करने की यथार्थ करने की आज बहुत बड़ी आवश्यकता है। गणित को नई एक परिभाषा देनी होगी..शाश्वत परिभाषा देनी होगी। और इस शाश्वत एक तथा शाश्वत अनन्त परिभाषा के लिए गणित को अध्यात्मिक अनुभूति के शरणागत होना होगा.. उसकी कसौटी नहीं! कसौटी हीन कसौटीयों से किसी भी यथार्थ का मापन नहीं किया जा सकता है।

व्यवहार सत्यों से पटा है गणितशास्त्र जो वैज्ञानिक होने का दावा करता है। गणित का एक एक नहीं अनन्त है और गणित का अनन्त अनन्त नहीं भटकाव है। धर्म इस गणित की तुलना में कहीं अधिक पूर्ण एक और अनंत की परिभाषा देता है।

अध्यात्मिक ईकाई क्या है? किसी भी एक पदार्थ को लिया जाए.. उसके दो भाग किए.. एक को छोड़ दिया जाए दूसरे के फिर दो भाग किए.. ऐसे ही हर भाग के भाग करते चले गए.. अंतिम अवस्था तक। अंतिम अवस्था क्या होगी? कठोपनिषद का अणोरअणीयान यही है जो अंतिम अवस्था दर्शाता है। अंतिम अवस्था वह है जिसमें यदि सूक्ष्मतम कण का और भाग किया जाए तो वह शून्य हो जाएगा याने कि शून्य और अस्तित्व की सीमा रेखा प्रदिर्शित करता वह कण होगा। इस शाश्वत इकाई तक विज्ञान नहीं पहुंचा है.. इस इकाई से पूरा का पूरा विश्व आपूर्त है न्यूट्रान, इलेक्ट्रान, प्रोटान ही नहीं उनके मध्य का अवकाश भी इसी इकाई से आपूर्त है यह इकाई ही शाश्वत एक है, अखंडनीय एक है सिर्फ एक है.. शून्य जिसके निकटतम है और दूसरा एक भी इसके निकटतम है.. यह दूसरे एक का इसके निकटतम होना एक दूसरी परिभाषा की और इंगन करता है.. यह दूसरी परिभाषा है वेद का एक मंत्र चरण "वह प्रगट होते ही फैला हुआ है।" यही कठोपनिषद का महतो महीयान है। एक के निकट दूसरा दूसरे के निकट तीसरा चहुं दिशि यह सर्वत्रीय परम विकास ही अनंत है।

अध्यात्म की इस एक और अनंत की शाश्वत परिभाषाओं को कोई गणित कोई विज्ञान खंडित नहीं कर सकता है.. गणित की एक

अनंत परिभाषाएं इन्ही परिभाषाओं के निम्नस्तरीय नमूने है। गणित की एक का अनंत होना मान्यता तो कम ही गलत है पर इस गणित का एक कई अनंत है अपने आप में फिर भी वह एक माना जाता है। गणित के इस एक एकांक से कम कई कई अनंत श्रेणीयों का जन्म होता है। एक श्रेणी ऊपर दी गई है दूसरी १÷२ + १÷४ + १÷८ + १÷१६.... तीसरी १÷५ + १÷१० + १÷१५.... आदि आदि जो सभी अनंतता तक जा सकती है यह गणित की एक मान्यता दो तीन चार पांच आदि समस्त संख्याओं के महान झूठों को ही नहीं वरन एक के झूठ का भी पर्दाफाश करती है। यथार्थ विज्ञान समझे जाने वाले गणित का इस व्यवहार रूपों का आधार लेना उसे काल्पनिक सिद्ध करता है। आज समय आ गया है कि मानव को सही अध्यात्म तक वापस लौटकर लाया जाए.. विज्ञान की अपाहिज परिभाषाओं की कसौटी से अध्यात्म नापने के घिनौने प्रयास बंद किए जाएं। अध्यात्म अधिक सूक्ष्म है.. विज्ञान गणित स्थूल है.. इंच के पैमाने में मिलीमीटर नहीं नापा जा सकता। यदि विज्ञान से तात्पर्य जैसा कि आज के सामाजिक वैज्ञानिक मानने लगे है विधि से है तो यह विधि भी हर क्षेत्र में अलग अलग होगी.. अत: शाश्वतता से परे की ही होगी। अलग अलग क्षेत्रों में अलग अलग पैमानों को एक विज्ञान की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। अध्यात्म का पैमाना.. आदमी है.. जो कि विज्ञान द्वारा नापा नहीं जा सकता.. क्योंकि वह विज्ञान का जन्म दाता है। नानक ने बड़ी भोली भाषा में इस महान सत्य को कहा है।

"पिता का जन्म न जाने पूत"

पूत विज्ञान है पिता है आदमी।

अध्यात्म... याने कि "आत्मा में" अनुभव शून्य के अत्यंत निकट है। आत्मा शून्य – अस्तित्व सीमा रेखा प्रदर्शित करती चैतन्यता है। "आत्मा में" की पूर्वावस्था है 'ध्यान' याने कि बस एक में लीन। "एकालीन" अर्थ रूप में जब सिकुड़ जाता है तब स्वरूप शून्य सा प्रतीत होता है और यही है 'समाधि'। "ध्यान जब अर्थ मात्र रह जाए और स्वरूप शून्य सा प्रतीत हो, उसे समाधि कहते हैं" [९८] "शून्य सा" की सत्यतम अनुभूति शून्य अस्तित्व की सीमा रेखा पर ही हो सकती है। यही अध्यात्म की एक बौद्धिक विवेचना है।

"ध्यान से आलोकित मानव उस अखिल को अंतस गहन में स्थित देखता है जिसमें विश्व एक नीड़ के समान लघु है।" [९९]

नीड़ से भी लघु भी हो जाता है यह विश्व जब मानव अनुभूति के स्पन्दनों से स्पंदित होता है.. शाश्वत गति को छूता है। शाश्वत गति क्या हैं?

आईस्टीन ने एक सूत्र दिया है $E = MC^2$ यदि प्रकाश की गति से किसी पदार्थ को चलायायान किया जाए तो वह पदार्थ शक्ति में परिवर्तित हो जाएगा। और उस शक्ति की मात्रा.. पदार्थ की मात्रा और प्रकाश की गति के वर्ग के गुणनफल के बराबर होगी। मैं साहस पूर्वक कह सकता हूं कि इतने बड़े निरपेक्ष वैज्ञानिक का उपरोक्त कथन अंशत: सत्य है। काश! आईस्टीन भारत में पैदा होता तो वह एक ऋषि होता .. भारत में पैदा होने से मेरा तात्पर्य उसने वेद मंत्रों को अनुभूत किया होता से है। तब उस ऋषि ने कहा होता प्रकाश की गति से प्रक्षेपित पदार्थ दूसरे भिन्न सूक्ष्म पदार्थ में बदल जाता है.. शक्ति में नहीं। प्रकाश की गति को आईस्टीन शाश्वत बताता है, पर वह गति शाश्वत नहीं है.. क्योंकि वह गति है। कोई भी गति जो गति है शाश्वत नहीं हो सकती है। **अगतित गति ही शाश्वत हो सकती है।** प्रकाश यांत्रिक लाभ हैं पदार्थ का। हर यांत्रिक लाभ में शक्ति अपव्यय होता है। शक्ति – अपव्यय की व्यवस्था में घटा परिवर्तन शाश्वत नहीं हो सकता है। हर भौतिक समृद्धि शक्ति अपव्यय द्वारा यांत्रिक लाभ की व्यवस्था है। मोटी भाषा में कहां जाए तो कोई भी मशीनी प्रक्रिया इनपुट से अधि ाक आऊटपुट नहीं दे सकती है.. भौतिकी सत्य का बिलकुल उलट है अध्यात्मिक सत्य जिसमें इनपुट से आऊटपुट अधिक ही नहीं वरन विविध ा भी होता है।

आदमी बेशक सर्वोत्त ाम मशीन है सृष्टि की।
सीमित इनपुट पर असीमित आऊटपुट देती है॥

आदमी जब आदमी में रहता है उस समय "ऋत प्रज्ञित" अवस्था में उसके लिए एक सूत्र का प्रयोग होता है और सूत्र है– शून्य = अनंतता। बड़ा मोटा सा अर्थ है इसका कि आदमी शून्य होते ही अनन्त हो जाता है.. अहसास तो हर पल आदमी के साथ रहता है यह अहसास उसके आस्तित्व का प्रतीक है.. जब अपने यथार्थ अहं तक आदमी पहुंचता है तो वह शून्य के निकटतम होता है.. अहसास उस समय शून्य की अपेक्षा से होता है अत: आदमी शून्य विभाजित होता है.. अत: शून्य समय में अनंत होता है। उस स्थिति में वह शाश्वत गति से चलायमान रहता है.. शाश्वत गति अगतित गति इस अर्थ में है कि शून्य समय में आदमी पुन: अपनी स्थिति पर आ जाता है.. हर रेखा एक वृत है.. सरल रेखा भी सबसे बड़ा वृत है.. अत: शून्य समय में अनंत गति युक्त अहसास स्थिर रहते हुए भी गतित रहता है।

ऋषि अनुभूति उपरोक्त सत्य की कितनी सशक्त भाषा में अभिव्यक्त है।

"वह चलता है और नहीं भी चलता है। वह दूर है और समीप भी है वह सबके अतंर्गत है वही इस सबके बाहर भी है। [१००]

अनंत गति केवल एक दिशा में नहीं होती वरन सभी दिशाओं में व्याप्त होती है। चलना न चलना दूर से दूर समीप से समीप सबके अंदर एवं सबके बाहर एक साथ होने की अवस्था एक ही स्थिति में सम्भव है वह स्थिति है शाश्वत गति की स्थिति। शाश्वत गति की ही स्थिति में पूर्ण का पूर्ण पदार्थ मात्र शक्ति में परिवर्तित हो जाता हैं... यही स्थिति अगतित गति की है।

३. आप्त में

धर्म की एक परिभाषा है– "उस होने में ही जीना, जो मैं हूं उससे जरा भी च्युत न होना ही धर्म है।" [१०१] यही तो अध्यात्म है.. याने आत्म में। और मानव का आत्म में होना उसे एक दिव्य वितान दे देता है.. जहां सिर्फ होना ही होना रहता है.. अस्तित्व का यथार्थ रूप यही

होना ही तो है.. इसके अतिरिक्त हर अवस्था में मानव झूठे न होना से जुड़ा रहता है। इस होने के ही तो सारे चेहरे फैले हैं दुनिया में इन चेहरों को होना समझना ही संसार है इन चेहरों में होना पहचानना ही अध्यात्म है।

"मैं केवल उसे ही पा सकता हूं जिसे मैंने किसी गहरे अर्थ में सदा से पाया हुआ है। मैं केवल उसका ही मालिक हो सकता हूं जिसका मैं जाने न जाने अभी भी मालिक हूं। मुत्यु जिसे मुझसे नहीं छीन सकेगी वही केवल मेरा है। रुग्ण हो जाएगा सब कुछ, दीन हो जाएगा सब कुछ, नष्ट हो जाएगा सब कुछ फिर भी जो नहीं विलीन होगा, वही मेरा है" [१०२]

एक कण 'मैं' मिठास मुंह में रखकर आदमी पूरी दुनियां का नमक पहाड़ बिना खारा हुए घूम आ सकता है। चादरिया झीनी झीनी से अलग कबीर यही मैं तो था.. जो इस 'मैं' की पवित्र लालिमां में गा उठा था–

लाली तेरे लाल की जित देखू तित लाल।
लाली देखने मैं गई में भी हो गई लाल॥

यह लालिया होने की ही लालिमा है.. स्थायित्व की लालिमा है.. शाश्वतता की लालिमा है।

स्वयंता की अनुभूति सबसे बड़ी है। सारी की सारी परिभाषाएं इस स्वयंता में छोटी पड़ जाति हैं... सृष्टि के आदि से आज तक की गढ़ी गई परिभाषाओं को अध्यात्म अनुभूतियों ने ही लघु किया है। एक बार मानव इस अध्यात्म में डूबे तो वह... विशालतम हो जाएगा सहजत उसे अपने आपकी इस पूर्णता का अहसास होगा कि कह उठेगा वह–

यहोबा, खुदा, ब्रह्म, बुद्ध, भगवान।
इस 'आप्त मैं' की ही लघु संज्ञाएं हैं।

इस अनुभूति का भी भला कोई माप है? जहां परमात्मा इंच हो जाता है। इसका पैमाना बस यह स्वयं ही है।

एक घूंट 'मैं' पी लेता है जब आदमी तो अवश, बरबस, सहजत: सारी दुनियां की मुहब्बत में डूब जाता है वह। दुनियां तो छोटा सा घनिष्ठ परिवार हो जाता है उसके लिए। जिस अनुभूति के एक घूंट में डूब जाता है आदमी इसकी माप कौन कर सकता है? कौन सा पैमाना उसे नापेगा? यह अनुभूति केवल 'हैं' और होने को नापने का पैमाना कोई नहीं है। असल में हर पैमाना इस है को नापता नहीं इसकी और इंगन करता है।

"अनुभूति के लिए कोई प्रमाण नहीं होता, सिद्धातों के लिए प्रमाण होते हैं, सिद्धातों के लिए तर्क होते हैं। अनुभूति स्वयं ही अपना तर्क है। अनूभूति को जानना हो कि वह सही है या गलत तो अनुभूति में उतरना पड़ता है। सिद्धांत की जो तर्क सारणी है उस में उतरना पड़ता है। हो सकता है तर्क सारणी बिलकुल सही हो और सिद्धांत बिल्कुल गलत हो।" [१०३] अनुभूति कोई प्रमाण नहीं है वह तो एक वक्तव्य है. . एक सहज सरल चित्रण है। सारी तर्कणा सारे प्रमाण उस तक पहुंचने के पथ पर ही रुके रहते हैं। अनुभूति पथ विश्लेषण तर्कणा का क्षेत्र है.. मंजिल तर्क के क्षेत्र के बाहर की स्थिति हैं।

अनुभूति है क्या? अपने आप के स्वरूप में स्थित होना। संसार क्या है? अपने आप के अतिरिक्त किसी स्वरूप में स्थित होना या समझना। दूसरे के स्वरूप की स्थिति से हम अपने आपको जब जानते हैं। तो हम अस्तित्व शाली हैं.. अन्यों के पदार्थों के संबंधों को जानने से ही हम ज्ञानसम्पन्न हैं। अन्यों के प्रेमों में हम प्रेम संपन्न हैं। पर यह सब संसार है, अनुभूति नहीं। "पुरुष को अस्तित्व शाली नहीं कहां जा सकता क्योंकि वह स्वयं अस्तित्व स्वरूप है। आत्मा को ज्ञान संपन्न नहीं कहा जा सकता क्योंकि आत्मा स्वयं ज्ञान स्वरूप है उसे प्रेम संपन्न नहीं कहां जा सकता क्योंकि वह प्रेम स्वरूप है। आत्मा को आस्तित्व शाली, ज्ञान युक्त अथवा प्रेममय करना सर्वथा भूल है। प्रेम ज्ञान और अस्तित्व पुरुष के गुण नहीं वे तो उसका स्वरूप हैं" [१०४]

बाह्य जितना कुछ है उससे छूटकर ही मानव स्वयं को छू सकता है और जब मानव स्वयं को छूता है तो विराट हो जाता है.. विराट मानव के सम्मुख यह जग.. परम लघु हो जाता है। "जब (जहां) संसार की समस्त वस्तुएं बिलकुल तुच्छ हो जाती हैं तब पुरुष विश्व व्यक्ति विराट के रूप में प्रकाशित हो जाता है तब यह सारा विश्व सिन्धु में एक स्व प्रतीत होने लगता है और अपनी इस क्षुद्रता के कारण.. इस शून्यता के कारण न जाने कहां विलीन हो जाता है।" [१०५]

आदमी डूबता चला जाता है गहराई में। एक गहरी सीमा पर उसे 'मैं' मिलता है फिर 'मैं' में गुम जाता है कहीं और आदमी को 'हैं' मिलता है फिर 'है' से भी गहरा डूब जाने पर आदमी को मिलता है "––––––" । "–––––" यह अनाम है असंज्ञित है पर फिर भी है.. और "–––" ही अनुभूति है। इसे कई ऋषि मुनि महात्माओं ने छुआ है पर कोई भी बतला न सका है।

४ संसार मानव और अध्यात्म

"मनुष्य एक अमर्याद वर्तुल है जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है लेकिन जिसका केन्द्र एक स्थान में निश्चित है और परमेश्वर एक ऐसा अमर्याद वर्तुल है जिसकी परिधि कहीं भी नहीं है परन्तु जिसका केन्द्र सर्वत्र है" [१०६] **एक केन्द्रीय का सर्व केन्द्रिय हो जाना ही अध्यात्म है,** अनुभूति है, मानव जीवन का लक्ष्य है। लघुतम का महत्तम हो जाना एवं पलांश में.. ही अनुभूति है। "यदि मनुष्य अपनी क्षुद्र ससीम चैतन्यमय सत्ता का अतिक्रमण कर असीम अद्वितीय चैतन्यमय सत्ता के साथ तादात्म लाभ कर सके, तो वह ईश्वर स्वरूप बन सकता है और संपूर्ण विश्व पर अपना अधिकार चला सकता है। सत्य स्वरूप अद्वितीय विश्व चैतन्य के साथ मानव के सीमाबद्ध चैतन्य का अभेदत्व लाभ ही जीवन लक्ष्य है।" [१०७]

अध्यात्म का एक सूत्र है.. मानव ÷ संसार। जब तक मानव के लिये संसार बड़ा रहता है.. मानव छोटा रहता है.. जिस किसी भी आदमी

के लिए संसार जितना बड़ा है वह उतना ही छोटा है.. अध्यात्म उतना ही कम है उसमें.. यह सूत्र है–

मानव ÷ संसार = अध्यात्म

जिस जिस परिणाम में मानव के लिए संसार छोटा होता जाता है उस उस परिणाम में अध्यात्म बढ़ता चला जाता है अंतिम अवस्था में संसार शून्य हो जाता है बाह्य मिट जाता है और अध्यात्म (आत्म में) अनंत हो जाता है। इसी सूत्र का पक्षांतरित रूप है–

मानव ÷ अध्यात्म = संसार

मानव करीब करीब निश्चित है जब अध्यात्म बढ़ना शुरु होता है संसार कम होना शुरु होता है अध्यात्म के अनंत होने पर संसार शून्य हो जाता है।

संसार का शून्य होना हर स्थिति में मानव के लिए लाजिमी है..। **बाह्य से मानव का टूटना उस बाह्य से टूटना जो कि अस्थायी है अध्यात्म अनुभूति की एक आवश्यकता है।** "पूर्ण दर्शन तो फायनल अवस्था में ही होता है, जब हम प्रकृतित्व देहादि चेतना का लोप कर देते हैं" [१०८]

प्रकृतित्व, देहाई चेतना ही तो सारे के सारे बंधनों सारी की सारी अपूर्ण गतियों का नाम है.. जब मानव इन सारे के सारे लघु आकारों से मुक्त हो जाता है तब वह अनंतानुभूति करता है।

उन्मुक्ति का आनंद सर्वोतम आनंद है। इस एक आनंद के लिए ही मानव जन्म लेता है.. एक नहीं कई कई जन्म लेता है.. "अनादि काल से हम मुक्ति का संगीत गुंजाते आए हैं। बचपन से मुक्ति की आकांक्षा हमारी नसों में प्रवाहित है" [१०९] यह बचपनी मुक्ति की आकांक्षा धीरे–धीरे जवान होती जाती है, प्रबल होती जाती है और हमें लगता है कि "हम सृष्टि करने आए हैं क्योंकि सृष्टि में ही आनंद है। तन, मन बुद्धिबल से हमें सृष्टि करनी है, जो अन्तर्निहित सत्य है.. जो सुन्दर है.. जो शिव है.. उसे सृष्ट पदार्थों में हमें प्रस्फुटित करगें। आत्मदान में जो आनंद है, उस आनंद में हम खो जाएंगे।" [११०] आत्मदान अध्यात्म है, अन्तर्निहित सत्य है। आत्म इस परम सत्य का सृष्ट पदार्थों में पूर्ण विकास है.. अन्तसानुभूति जो केवल अनन्त ही नहीं वरन घनिष्ट भी है। वह इतनी अनंत इतनी घनिष्ट है कि उसे छूते ही इन्द्रियां मौन हो जाती हैं.. मौन आनंदातिरेक में होती हैं तभी तो उसे अभिव्यक्त नहीं कर पाती हैं.. बस यह अस्तित्व.. उसे भोगता चला जाता है। इस अनुभूति की भाषा बस मौन है.. वह मौन जो अस्तित्व को सर्वाधिक मुखर है। "मौन अनन्त की भाषा है।" [111]

केवल अध्यात्म ही संज्ञा नहीं है इस परम अनुभूति की। स्वतंत्रता एवं स्वाधीनता भी इसी की संज्ञाएं हैं। स्व + तंत्रता.. याने कि स्व की तंत्रता... वह जीवन जो स्व के लिए, स्व के द्वारा, स्व का हो स्वतंत्र जीवन है। स्व की आधीनता स्वीकार कर लेने पर मानव पूर्ण हो जाता है, उसका हर कर्म व्यापक हो जाता है, ऋत हो जाता है। स्व ही तो 'आत्म' है। आत्माधीनता एवं आत्मतन्त्रता आत्मानुभूति के बाद के चरण हैं। स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को छोटे छोटे राजनैतिक घेरों से उन्मुक्त करके सही अर्थों में अध्यात्म के निकट आना ही होगा।

भटकाव नहीं ठरहाव है अध्यात्म अनुभूति, परम ठहराव.. केवल ठहराव.. निरपेक्ष ठहराव। उसके विषय में कहा गया है कि– "वह एक है वह एक ही है"। [112] सिर्फ एक में ही ठहराव हो सकता है... दूसरे तीसरे में नहीं। दूसरा तीसरा.. चौथा.. भटकाव की स्थितियां हैं। एक ही ठहराव की स्थिति है "वह दूसरा नहीं, तीसरा नहीं, चौथा नहीं, पांचवा नहीं, छठा नहीं, सातवां, आठवां, नौंवा नहीं दसवा भी नहीं.. वह तो एक ही है.." [113] समस्त भटकावों से वापस एक पर आ मानव ठहर जाता है.. शांतात्मा हो जाता है।

"ईश्वर से पहले था, मैं हूं । तत्व केवल एक है और वह तत्व 'मैं' हूं। सारा विश्व मेरा संकल्प मात्र है। विश्व मेरा शरीर है, वायु और पृथ्वी मेरे वस्त्र और जूतियां। आकाश का अर्ध मण्डल मेरा प्याला है और उसमें झलकती आभा मेरी शराब है" [११४] कितनी व्यापक कितनी विशाल है अनुभूति एक साधक की जिसे स्वर देने का प्रयास किया गया है। आकाश के प्याले में भरा सोम पीने वाला अस्तित्व कितना महान दिव्य है!

यह पावन अनुभूति.. असीम में समीम मानव द्वारा आखिल व्यापक की सान्त अभिव्यक्ति कोई आज की बात नहीं है यह तो सृष्टि के आदि तब से वर्तमान अब तक वही है.. विशाल संसार के हर कोने में वही है.. और यही इसकी सत्यता का प्रमाण है। चरम विकास चरम प्रगति की अवस्था है.. उत्तरोत्तर सीढ़ियों की अंतिम सीढ़ी है यह जो कि मंझिल है।

"मैं खनिज के रूप में मरा और एक पौधा बन गया मैं पौधे के रूप में मरा और पशु के रूप में उठ खड़ा हुआ।

मैं पशु के रूप में मरा और मनुष्य बन गया मैं क्यों डरुं? मैं मृत्यु से कम कब हुआ?

फिर भी एक बार फिर मैं मनुष्य के रूप में मरुंगा कि देवदूतों के साथ रहूं।

किन्तु देवदूतों की स्थिति से भी आगे जाऊंगा, क्योंकि ईश्वर के सिवाय सब समाप्त हो जाते हैं।

जब मैं देवदूत का रूप छोडूंगा तो ऐसा कुछ बन जाऊंगा जो अकल्पनीय है।

मैं अनास्तित्व में खो जाऊंगा क्योंकि अनास्तित्व कह रहा है कि हम उस परम में ही लौटते हैं।"

जलालुद्दीन रूमी द्वारा अनुभूत यह विकास गाथा अमर विकास गाथा है.. अनास्तित्व में खो जाना, अकल्पनीय हो जाना, परम में लौट जाना ही सच्ची अस्तित्व सार्थकता है।

मानव सारे गाथों का जन्म दाता है.. अत: अमाप है.. यह अमाप मानव भी जब अपने आप से पार चले जाता है और अपने आप को अनंत देखता है तब अनुभूति जन्म लेती है.. अमाप के परम पार को भला किस माप से मापा जाएगा..? ये अध्यात्म.. ये आत्म में.. 'है'. . और बस केवल 'है'। इस 'है' का कोई प्रश्न नहीं.. इस 'है' का कोई उत्तर नहीं है.. यह तो बस 'है'।

सर्वोत्तम सत्य जगती का " मैं है" है। "मेरा होना" स्वयं सिद्ध सत्य है। मैं लिखता हूं अत: मैं हूं, तुम पढ़ते हो अत: तुम में यही "मैं हूं"। इस मैं हूं का व्यापक फैलाव ही अध्यात्म है। मेरे होने का क्षण तब से अब तक सर्वाधिक महत्व पूर्ण क्षण है।

"फिर भी क्षण का महत्व मानव इतिहास में सदा रहेगा जब उसने (मानव) ने पहली बार तूफानों और भकम्प से कम्पायमान इस पृथ्वी पर अपनी अबोध आंखे खोली और अपने आप को ब्रह्म के विराट स्वर में सह गुंजित पाया

अहं !! दिशाओं ने घोषित किया होगा।

अहं !!! बिजली ने गड़गड़ा कर ललकारा होगा और शिशु मानव ने अपनी भौतिक लघुता का अवलोकन करके विनय पूर्वक मन ही मन कहां होगा– "अहं अस्ति"। [११५] "अहं अस्ति" ही वह सत्य है जो आज भी वही है मानव के लिए जो कल था.. कल भी यह वही रहेगा जो आज है, सृष्टि का अपरिवर्तनीय, स्वयंसिद्ध सर्वाधिक प्रत्यक्ष सत्य है..... "मैं हूं"।

४. तुरीयातीत

अनुभूति के आत्म आयाम में मानव अपने और ईश्वर के मध्य का क्रम खो देता है.. उत्तरोत्तर प्रगति में एक स्थल उसने केवल यह सत्य ही नहीं जाना कि "मनुष्य ईश्वर निर्मित एवं उसी की प्रतिमूर्ति है" वरन उसने यह सत्य भी जाना कि "ईश्वर मनुष्य निर्मित एवं उसी की प्रतिभूति है।" [११६] यह परम सत्य कि ईश्वर मनुष्य निर्मित एवं उसी की प्रतिमूर्ति है.. अहं अस्ति का उत्कृष्ट स्वरूप है।

समस्त आपेक्षिक सत्यों, बाह्य सत्यों की दीर्घता को आत्म सूक्ष्म द्वारा परे हटाने पर ही.. मानव नव हो जाता है.. यह न होना... अपने आप के निकटतम होकर बाकी सब कुछ से परे हो जाना है। "(अध्यात्म पुरुष) आत्मा की छलनी में निरन्तर विक्षेपों (मलों) छानते हैं और इस प्रकार दीर्घ एवं नवीन आयु को धारण करते हुए परे चले जाते है।" [११७] यह दीर्घ एवं नवीन आयु क्या है? यह मानव का समयजीत हो जाना है...। समयजीत मानव ही परे जा सकता है.. लघुतम.. शून्य समय में महत्तम दूरी अनंत तय करना ही परे जाना है।

पूरा जगत आवास है उस ब्रह्म का अतिरक्त कोई स्थान नहीं कोई पल नहीं है उससे.. और पूरे जगत में व्याप्त उससे तादात्म कर लेना ही अध्यात्म – अनुभूति है। सृष्टि के आरंभ से आज तक कई व्यक्ति ऐसे हुए हैं जो इस तादात्म्य में सफल हुए हैं। जिन्हानें इस तादाम की और इंगन किया है.. ये इंगन एवं तादात्म पथ उपलब्ध हैं मानव को। इन इंगनों से उपलब्ध सत्य का रस दिव्य सोम है जो ब्रह्म से पूर्णत: आप्लावित है.. इसका उपभोग.. उपभोग नहीं है.. यह दिव्य रस उपभोगात्मक नहीं है.. यह तो असमाप्त है.. और यह हर कुछ को हर पल को दिव्य स्वादिष्ट कर देता है। "जो व्यक्ति आप्तों द्वारा संग्रहीत पवित्रकारणी ऋचाओं के रस का अध्येता है धारण कर्ता है.. वह जगत के कारण में रमें प्राण ब्रह्म द्वारा सभी कुछ को दिव्य स्वादिष्ट अश्नत (ग्रहण करना, चखना,) करता है" [११८]

आज अध्यात्म का एक अर्थ जो बहुत सामान्य हो गया है वह है– "तैरो मत बहो"। यह निर्देश अध्यात्म के लिए कुछ कम उपयोगी है। बहना.. जड़ से संबंधित है.. पत्ता बहता है.. लकड़ी बहती है.. तिनका बहता है.. जड़ और चैतन्य में अतंर है। बहने के उदाहरण स्वरूप कहा जाता है कि बच्चे बनों। बच्चे बहते है। बेशक बच्चे बहते हैं वे भूलों से जुड़कर भूले नहीं करते अच्छाइयों से जुड़कर अच्छाईयां नहीं करते.. वे वेवकूफ होते हैं.. सहज मूर्ख होते हैं जिसे भोलेपन की संज्ञा दी गई है। पर इस सबका अध्यात्म से बड़ा क्षीण सा ही संबंध ा है। समझ परिष्कृति अध्यात्म अनुभूति की प्राथमिक आवश्यकता है। सहज मूर्ख होना एक अवस्था है तथा सहज परिष्कृत होना दूसरी अवस्था है। इस दृष्टि से देखा जाए तो जानवर और अधिक बहता हैं.. और एक कोशीय अमीबा सबसे अधिक सहज है.. अत: आदमी को इतनी निम्न सीमा तक उतारने की कोशीश नहीं होनी चाहिए। आदमी को बहने का नहीं तैरने का सन्देश दो.. तैरने का नहीं दौड़ते हुए तैरने का (तरत स मन्दी धावति) दौड़ते हुए तैरो का ही नहीं वरन आप्त सोम में मस्त तैरते हुए दौड़ने का संदेश दो। आप्त ऋषि वचन कहता है। पवित्रता से आपूर्त धारा बहती है तुम इस में तैरते ये दौड़ते चलो। "वह आनंद भरा तैरता सा दौड़ता है.. पवित्रता की सतत धारा बह रही है.. वह आनन्द भरा तैरता सा दौड़ता है।" [११९] मानव! तुम ऋषि वाणी रस के माध्यम से मस्त होकर तैरो.. दौड़ते से तैरो .. तैरते से दौड़ो.. अपनी गति यहां तक बढ़ाओ कि अगतित गति रह जाओ। अगतित गतिमान बहना नहीं है परम तैरना है.. शून्य अवधि में अनंत गति है। ओ रे मानव. . ओ रे अमृत पुत्र.. ओ रे शाश्वत.. ओ रे आदि तब से आदि तब तक समान.. ऐ परमानंद के महासागर उठो! खूब मौज से लहरें लो और तूफान बरसा करो। पृथ्वी आकाश को एक कर दो " [१२०] अगतित गतित से कंपनीय अस्तित्व ही पृथ्वी आकाश एक कर सकता है.. पा सकता है.. मानव रे.. बहने से तैरने तक तैरने से परम तैरने तक प्रगति करो थमों नहीं.... तुम सूक्षमतम होकर महत्तम हो जाओगे।

अध्यात्म अनुभूति केवल मानव अस्तित्व में ही परिर्वतन नहीं करती मानव प्रक्रिया में भी परिर्वतन करती है.. मानव श्वास दर, मानव रक्त में भी परिर्वतन करती है, जैसे इस अनुभूति के लिए शब्द द्वितीयक होते हैं वैसे ही ये प्रक्रियाएं द्वितीयक होती हैं.. इन भौतिकी परिर्वतनों को विज्ञान के कुछ क्षेत्र नाप भी सकते हैं।

"ध्यान और शरीर किया पर अमरीकी **डॉ.वालेस** का विचार है कि मानव चेतना की एक चतुर्थांश अवस्था भी है जो अनुभवातीत ध्यान द्वारा प्राप्त की जा सकती है। इस अवस्था को वैज्ञानिक आधार पर सिद्ध किया जा सकता है। डा.वालेस के अनुसार अनुभवातीत ध यानवस्था के दौरान मनुष्य में आक्सीजन की खपत अपेक्षाकृत कम हो जीती है और उसके रक्त में लेक्टेट का जमाव भी घट जाता है। ओषजन सबंधी यह परिर्वतन श्वसन पैटर्न में किसी प्रकार की कृत्रिम रद्दोबदल के कारण नहीं अपितु एक सहज शरीर क्रियात्मक परिर्वतन के कारण होता है। इसका सबूत है कि इस अवस्था में रक्तीय आक्सीजन एक कार्बन डाय आक्साईड के दबाव आंशिक दाब स्थिर रहते हैं।

इसी प्रकार लेक्टेट सांन्द्रण में जो परिर्वतन अनुभवातीत ध्यान के दौरान होता है, उसका कारण है विशिष्ट जैव रसायन अभिक्रिया। शरीरक्रियाविज्ञानी यह मानते रहें हैं कि उच्च रक्तदाब, मानसिक चिन्ता अथवा तनावों के कारण मनुष्य के रक्त में लेटेक्ट का अधिक्य होता

है इसलिए यह नतीजा निकलना बहुत स्वाभाविक है कि ध्यान मनुष्य के मानसीक तनावों आदि को कम करने में सहायक है।

इन आतंरिक परिर्वतनों के अलावा यह भी प्रमाणित हुआ है कि ध्यानावस्था में बाह्य त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता बढ़ जाती है। इसमें मनुष्य बाह्य संक्रमणों का अधिक मजबूती के साथ मुकाबला कर सकता है। [१२१]

श्वसन दर में परिर्वतन निम्न ग्रॉफ द्वारा स्पष्ट किया जाता है।

उपरोक्त अनुभवातीत ध्यान की अवस्था तो एक नमाप सी अवस्था है, इसका प्रमापीकरण एक सामान्य सी विश्रामावस्था का प्रमापीकरण है... इसे मोटे से सत्य के द्वारा झुठलाया जा सकता है.. श्वास के क्रम अनुक्रम की गति से ही यदि ध्यान का संबंध है तो वह ध्यान तो बड़ा बच्चा ध्यान है, बड़ा छोटा ध्यान है, बड़ा लघु ध्यान है.. जो ध्यान नहीं एक विशिष्ट आराम की अवस्था है। ध्यान आराम नहीं है.. ध्यान तो कर्म है.. क्रिया है जो सामान्य से भी अधिक क्रिया है। एक व्यक्ति मेहनत करता है परिशुद्ध मेहनत मानसिक चिन्ता कहीं नहीं है उसे.. उसकी सांस बढ़ जाएगी.. उसकी ओषजनावश्यकता बढ़ जाएगी.. पर वह व्यक्ति हीन नहीं है.. ध्यानवस्थित व्यक्ति से उसका मानस भी.. वही शांत है। अत: ये निष्कर्ष ध्यान पर विज्ञान के बड़े छोटे छोटे से निष्कर्ष हैं।

उपरोक्त अध्ययन केवल कुछ लक्षणों का है तथा ये लक्षण भी रास्ते की एक अवस्था के है.. एक सीढ़ी के हैं मंजिल के नहीं। अनुभवातीत ध्यान अनुभूति की एक क्रिया है जो मानव करता है जबकि अनुभूति मानव की एक स्थिति है जिसमें मानव अगतित गतित होता है। एक बौनी क्रिया अध्यात्म की वैज्ञानिक प्रमापों द्वारा प्रमापित होकर इतने उत्कृष्ट निष्कर्ष देती है.. तब अनुभूति तो अनुभूति है। बीस तीस मिनट का अनुभवातीत ध्यान तो एक 'नाइन ओ क्लाक' फूल है जिसकी जिन्दगी बड़ी छोटी होती है, जिसका खिलना समय धारित होता है. . अनुभूति तो 'ट्वैन्टी फोर ओ क्लाक' है जिसके खिलने का समय हर पल है हर क्षण है।

इस ध्यान की अगली अवस्था है बीस मिनटावस्था का चौबीस घंटेयी हो जाना और उसकी अगली अवस्था है श्वसन प्रश्वसन.. दर प्रति मिनट अपरिवर्तनीय रह जाना उसमें एक दो का भी भेद न रह जाना... और उसके बाद की अवस्था है.. निश्चित श्वसन गति स्तर का ऊर्ध्वपतन। शरीर की अनुभूति अवस्था में एक बार यह स्थिति होती है कि नासिका रन्ध्रों से श्वास प्रश्वास बहती है.. यह दीर्घतम श्वास प्रश्वासावस्था है.. यह श्वासीय अजपाजप अवस्था है।

अनुभूति चरणों को लिखना एक जटिल प्रक्रिया है.. लिखते–लिखते आदमी श्वासीय अजपाजप साधना में डूब जाता है.. स्फुरणों में स्फुरित हो जाता है। श्वासीय अजपाजप में शरीर के रक्तकण.. एवं अन्य कोषिकण आप्त हो जाते हैं। इन समस्त कणों की फैक्ट्रियां.. एक समावस्था में संतुलितावस्था में होती हैं.. इनमें एक कुछ ईश्वर सा तत्व इन्हें नियोजित कर देता है.. यहां चय, अपचय क्रिया थम जाती है. .. क्योंकि यह अवस्था स्व ओषजनावस्था है.. स्वशक्तितावस्था है.. हर तन कोशिका का शांत स्वत: स्थित हो जाना.. इनमें व्याप्त चैतन्यता के ईश्वर को एक प्रभुत्व दे देता है.. यह प्रकम्पित ईथर.. तब पूर्ण तन को उस एक से अस्तित्वित कर देता है.. वह एक इसमें अस्तित्वित होते ही.. यह.. तन अतिमानस हो जाता है। अरविन्द की सशरीर चैतन्यता यह है। पर यह भी अनुभूति नहीं है.. एक सीढ़ी है, एक स्तर है एक प्रक्रिया है एक साधना है। इस स्थिति के विज्ञान को अभी जन्म लेना है। विज्ञान सतह देख सकता है गहराई नहीं। अध्यात्म अनुभूति गहराई है सतह नहीं। अतिचैतन्य शरीर को आप्त सूक्ष्म शरीर की संज्ञा दी जा सकती है.. जहां संस्कार विलुप्त हो जाते हैं एवं सूक्ष्म शरीर गलना प्रारंभ होता है।

जग और मैं का भ्रम यहां टूटता है.. एक है पन का ठोस वितान इत उत् सर्वत्र अहसासित होता है.. इस ठोस है पन में भी मानव. . गति करता है.. मानव अति ही सूक्ष्म होता है.. उसकी तुलना में ही यह है पन एक ठोस होता है.. यहां तक मानव जग से संबंधित रहता है.. यह मानव जागृत से स्वप्न से सुषुप्ति पार करके पहुंचा रहता है.. पर.. यह... और यह.... तुरीया है.. इसी अवस्था तक के इंगन कुछ कुछ सम्भव है.. और इसके पश्चात की अनुभूति है.. तुरीयातीत..। तुरीयातीत ही यथार्थ अध्यात्म अनुभूति है। इसका कोई गणित नहीं है, कोई विज्ञान नहीं है। हर गणित हर विज्ञान एक बौना बच्चा है यहां।

७. पारस मैं जगमय हैं

विज्ञान के मापदंड पैमाने भौतिक हैं स्थान काल, वस्तु, जीवन, ये सब ही विज्ञान के मूल आधार है.. इन सब मूल आधारों की एका की और विज्ञान गति कर रहा है.. ये मूल आधार आपेक्षिक हैं। स्थान समय के विभेद आइंस्टीन नहीं मानते.. इनके मध्य की दीवार गिर गई है.. पर आइंस्टीन प्रकाश गति को शाश्वत मानते समय भूल गए थे कि प्रकाश तत्व नहीं है यौगिक है.. और एक दो तत्वों का यौगिक नहीं कई कई तत्वों का यौगिक है जिनमें सात कहे जाने वाले तत्व (हो सकता है ये भी यौगिक हो.. हो सकता नहीं वरन ये तत्व भी यौगिक ही है.. मैं दावे से कह सकता हूं) कुछ अधिक स्पष्ट है। विज्ञान को.. अपना पूरा का पूरा चोला बदलना है.. अध्यात्म के शरण जाना है.. इन चार माप दंडों की आपेक्षिकता की विनादी सीमा पर.. उसे अध्यात्म मापदंड अपनाने ही होंगे। वह विज्ञान सामान्य विज्ञान नहीं आप्त विज्ञान होगा। जहां कोई मूर्ख.. फुट पैमाने से.मी. तक मापने में असमर्थ होने पर से.मी. को अस्वीकार कर उस पर हंस न सकेगा।

"एक घड़ी ऐसी आती है, कि जैसे जैस हम भीतर जाते हैं बाहर और भीतर का फासला गिरता चला जाता है। एक घड़ी आती है कि न कुछ बाहर रह जाता है न कुछ भीतर। एक ही रह जाता है जो बाहर भी है और भीतर भी।" शुरुआत इस घड़ी की कही से भी हो सकती है। अनंत स्थानों से हो सकती है पर अंत इसका अंदर– बाहर का अंतर समाप्त होने में ही है.. पर अनंत.. अनंत तरीके से फासले कम करने का यह साधन कितना सुलभ है..। अनंत से कभी कभी यह एकदम शुरु होता है फिर अनंत कम होने लगता है बहुत अधिक रह जाता है.. अधिक कई रह जाता है.. कई कुछ रह जाता है.. कुछ इने गिने .. इने गिने.. इने गिने रह जाता है.. एक.. और एक केन्द्र फैल

जाता है.. सर्वत्र.. कि.. मैं हूं"।

नाजूक पलकों तुम्हारा अहसान मंद हूं मैं,
तुम्हें बंद करता हूं सारी सृष्टि में फैल जाता हूं।

यह प्रथम चरण है अनुभूति का एक बार अंदर जाकर सारी सृष्टि तक अगर फैल जाता है आदमी तो–

नाजूक पलकों तुम्हारा अहसान मंद हूं मैं,
तुम्हें खोलता हूं सारी सृष्टि में फैल जाता हूं मैं।

पलक खोलना पलक बंद करना जहां एक ही अखिल सत्य को जन्म देने लगे.. वही आदमी होता हैं "एक"।

महामणी है यह "मैं"। इसे ही तलाशता आदमी इतना भटकता है। लेकिन जब इसे पा लेता है आदमी तब उसे लगता है कि.. यह "महामणी मैं" एक अद्‌भुत पारस है..जो सारे के सारे जग को मैं कर देता है।

६. अनुभूति इंगन

इस अध्याय में कुछ साधकों या चिन्तकों के अध्यात्म अनुभूति की ओर किए गए इंगनों को लिखना आवश्यक है। ये इंगन दिए जा रहे हैं।

"ईश्वर के अनंत अस्तित्व को सिद्ध करने का जितना ही अधिक मैं प्रयास करता हूं उतना ही कम उसे समझ पाता हूं, किन्तु मैं अनुभव करता हूं कि वह है.. यह अनुभूति ही मेरे लिए पर्याप्त है"– रुसों

"यद्यपि स्वामी दिखाई नहीं देता, उसकी उपस्थिति के प्रमाण भवन की छत से नीव तक छितराए हुए हैं"– ब्राडनिंग"

ईश्वर जो हर चीज का आलिंगन किये रहता है, हर वस्तु का निर्माण करने वाला तथा पोषण करने वाला है, क्या वह आप को, मुझे और अपने आप का आलिंगन नहीं करेगा? पोषण नहीं करेगा? आप अपने हृदय को उसमे पूरी तरह परिपूरित कर दीजिए और जब आपका आनंद का भाव पूर्णत: झलकने लगे तब आप उस स्थिति को आह्लाद कहिए, हृदय कहिए, प्रेम कहिए, ईश्वर कहिए, उसे कोई भी नाम आप दीजिए, मेरे पास उसका वर्णन करने के लिए कोई नाम नहीं है। मैं तो यह मानता हूं कि अनुभूति ही सब कुछ है और नाम एक व्यर्थ की वस्तु!"– गेटे

निश्चित रूप से किसी जिम्मेदार व्यक्ति के लिए यह सोचना सम्भव नहीं कि जब हम प्रकृति में, इतिहास में, आर्थिक या राजनैतिक क्षेत्र में, प्रयोगशाला में या फिर किसी ऐसी चीज में जो सचमुच आधुनिक हैचाहे चिन्तन में या अनुभव में.. ईश्वर को जान सकते हैं.. या उसका अनुभव कर सकते हैं। हम अनुभव में जिधर भी गुजरते हैं, ईश्वर का छिपना या उसका मौन ही अनुभव करते हैं

– प्रो.टॉमस जे.जे.एनिज़र

"जब प्यारी घाटी में मेरे आसपास धुंधलका छा जाता है और मेरे जंगल के गम्भीर अंधकार के ऊपर सूर्य चमकता दिखाई देता है, जब कल कल बहते निर्झर के किनारे ऊंची ऊंची घास पर मैं लेट जाता हूं और जमीन की हजारों घास की पत्तियां मेरा ध्यान आकर्षित करती हैं, जब कई छोटे छोटे कीड़े मकोड़ों के असंख्य न समझ में आने वाले चेहरों पर मेरा ध्यान जाता है और मैं उस सर्व शक्तिमान की उपस्थिति का अनुभव करता हूं जिसने अपनी प्रतिमा से मुझे बनाया है, मैं उस सर्वप्रेममय शक्ति की श्वास का अनुभव करता हूं जो हमें शाश्वत आनंद में निमज्जित कर रहा है। मेरे दोस्त! तब मेरी आंखों की रोशनी कम हो जाती है आर मेरे आसपास के विश्व तथा स्वर्ग की, मेरी आत्मा पर, एक व्यक्ति की मूर्ति की तरह छाप अंकित हो जाती है।" – गेटे

ऐ मौत बेशक उड़ा दे मेरे इस एक जिस्म को मेरे और अजसाम (शरीर) ही मुझे कम नहीं। सिर्फ चांद की किरणों, चांदी की तारें पहिन कर चैन से काट सकता हूं। पहाड़ी, नदी, नालों के वेष में गाता फिरुंगा, बहरे–मव्वाज (समुद्र की तंरगों) के लिबास में लहराता फिरुगां। मैं ही बादे–खुशखराम (मंद मंद पवन) नसी में मस्ताना गाम (सुबह की मस्तानी हवा) हूं। मेरी यह सूरते सैलानी (घूमने फिरने वाली मूरत) हर वक्त खानी (हल्की यात्रा) में रहती है। इस रूप में पहाड़ों से उतरा, मुरझाते पौधों को ताजा किया, गुलों (फूलों) को हंसाया, दरवाज़ों को खड़खड़ाया, सोतों को जगाया, किसी का आंसू पौछा, किसी का घुंघट उठाया, इसको छेड़, उसको छेड़, तुझ को छेड़, वह गया, वह गया, न कुछ साथ रखा, न किसी के हाथ आया.. ओऽम्! ओऽम्!! ओऽम्!!!– स्वामी रामतीर्थ

ओ हो! मैं कितना सुन्दर हूं! मैं बिजली में चमकता हूं, मैं बादल में गरजता हूं, पत्तियों में सरसराता हूं, मैं पवन में सनसनाता हूं, मैं सागर में लहराता हूं, मित्र मैं हूं, शत्रु मैं हूं।

ओ हो! यह कैसा आश्चर्य, विचित्र आश्चर्य है कि सब शरीरों में, सब व्यक्तियों में, सारे नाम रूपों में एक ही अनंत शक्ति व्यापक हो रही है। देखो, मैं.. मैं ही वह अनंत शक्ति हूं, जो सर्वश्रेष्ठ वक्ताओं के शरीर में, सर्वोत्तम पुरुषों के शरीरों में, नीचाति नीच व्यक्तियों के रूपों में व्याप्त हो रही है। ओ हो! कैसा आनन्द है, मैं तो अनन्त स्वरूप हूं मैं यह शरीर नहीं, कदापि नहीं! –स्वामी रामतीर्थ

"एक सरसराहर –जैसे आकाश सिमट कर नीचे उतर रहा है अपने विराट पंखो को मरोड़ कर मेरे शीश पर बैठ जाने को आतुर। मैं आवाज से घबड़ा कर आंखे खोल देता हूं.. काली छाया बहुत पास आ चुकी है क्योंकि अंधेरे में भी मैं उसके मुख को देख सकता हूं दूर से देखने के कारण ही तुम काली लगती हो किन्तु पास आने पर सुडौल.. गोला.. भरा–भरा कांतिपूर्ण मुख प्रात: काल ओस घुले स्वर्ण कमल सा किंचित झुका हुआ.. जैसे अलसाई पत्तियां सुबह की गैरिक किरण की सारी आभा अपनी सीमा में बांध लेना चाहती हैं । आह. . ओ.. मां.. प्राण वल्लभा.. तुम्हारे मुख पर कितनी लुनाई है हल्की धुली रुई के रेशे सेमल की चिकनी स्वर्ण पंखुरी में उलझ गए हैं। इस

आभा के समुद्र में गोरोचन का तिलक श्वेत कमल कोश की केसर अनी की तरह दमक रहा है.. मैं विजड़ित चित्त देखता ही रह जाता हूं. . तुम्हारी नीली झील की तरह पारदर्शी आंखों में कितनी शांति है स्थिरता है अचंचल गहराई का अथाह ममता भरा जल। —अक्षोभ्य भैरव की डायरी से (चैत्र शुक्ल प्रतिपदा संवत २०१६)

विवेकानंद (तरुण नरेन्द्र) स्वामी रामकृष्ण के पास अपने सांसरिक कष्टों को दूर करने की प्रार्थना लेकर गया स्वामी रामकृष्ण ने उसे देवी मां के पास भेज दिया.. तब का विवरण.. विवेकानंद के शब्दों में..

"एक प्रहर रात्रि बीतने पर श्री रामकृष्ण ने मुझे माता के मंदिर में जाने को कहा। उस वक्त एक विचित्र प्रकार का नशा मुझ पर छा गया था, पैर थर थर कांप रहे थे और इसी भावना में कि अब मुझे माता के दर्शन होंगे, उनके शब्द सुनने को मिलेंगे, मैं अन्य सभी चिन्ताओं को भूल गया। जब मंदिर में गया तो यही दिखाई दिया कि मां सचमुच चिन्मयी हैं, वे जीवित हैं और उनके शरीर में से रूप, प्रेम, लावण्य, करुणा मानों प्रवाहित हो रहे हैं। यह देख भक्ति और प्रेम से मेरा हृदय भर आया और मैं विह्वल होकर गदगद अंत:करण से बारम्बार प्रमाण करते हुए कहने लगा— मां विवेक दे, वैराग्य दे, ज्ञान दे, भक्ति दे, और जिस प्रकार मुझको तेरा दर्शन निरन्तर होता रहे वही उपाय कर।"

अध्यात्म एक भूख है जो हमेशा रहती है और हमेशा परितृप्त भी होती है। केवल यही भावना है... जो हर स्थिति में अमर रहती है. . मरती नहीं है.. आदमी इसे पाकर भी नहीं पाता है। इस अनुभूति में प्रकाश नहीं है फिर भी यह प्रकाश से परिपूर्ण है..।

"तब वह एक ऐसे प्रदेश में निवास करता है जो प्रकाश को प्राप्त न करता हुआ भी प्रकाश से परिपूर्ण है।" [१२३]

उपरोक्त अनुभूतियों से स्पष्ट है कि मानव को अध्यात्म व्यापक कर देता है.. और इस अनुभूति पश्चात आदमी की भावना रहती है कि वह पल प्रति पल व्यापकतम से जुड़ा रहे। व्यापकतम के लिए साधक कभी मैं, कभी तू, कभी अहं, कभी ब्रह्म, कभी परमेश्वर, कभी आत्मा, कभी परमात्मा, कभी मां, कभी शक्ति, आदि आदि का प्रयोग करता है.. पर यथार्थ अनुभूति एक ही होती है.. एक से थोड़ा बहुत ही विचलन होता है। विराट को देखना, कभी मानवीकरण के रूप में कभी निरूप रूप में.. ही अध्यात्म अनुभूति की ओर इंगन है..

"तू है देह शंभु की, तेरे वक्षोज युगल है चन्द्र और सूर्य, भगवति, तेरे आत्म को मैं भव के अनघ आत्म रूप में ग्रहण करता हूं.. तू मन है, तू व्योम है, तू मरुत है, तू है अग्नि, मरुत जिसका सारथी है, तू जल है, तू भूमि है। तेरे इन सब रूपों में परिणत होने पर कुछ शेष नहीं रहता है" [१२४]

द्वार चाहे अलग रहते हैं पर साधक पंहुचते सब उसी मंझिल पर हैं.. पर उस तक पंहुचने का पथ... वक्र पथ नहीं है.. कोई वक्र पथ उस तक नहीं पहुंचा सकता.. वक्र पथ तो कहीं पहुंचा ही नहीं सकता... घुमाव में पहुंचना कहां होता है? पुनरावृत्ति होती है। यदि कोई सरल रेखा की अध्यात्म परिभाषा दे.. तो वह यही है.. कि वह रेखा जो समस्त घेरों को काटती है और स्वयं घेरा नहीं है। गणितीय सरल रेखा सबसे बड़ा वृत है.. अध्यात्म सरल रेखा असमाप्तीय है। इसके ओर.. छोर है..। ओर पर बिन्दु है तो छोर पर अनंत फैलाव है..।

"महावीर जहां पहुंचते हैं, वहीं मुहम्मद पहुंच जाते हैं, जहां बुद्ध पहुंचते हैं वहीं कृष्ण पहुंच जाते हैं। जहां लाओत्से पहुंचते हैं, वहीं क्राइस्ट पहुंच जाते हैं। नहीं मालूम आपको किस जगह से द्वार मिलेगा। आप पहुंचने की फिक्र करना, द्वार की जिद् मत करना कि इसी दरवाजे से प्रवेश करुगां" [१२५]

पहुंचना वहीं है बेशक। द्वार का आग्रह नहीं हैं बेशक। लेकिन सरल रेखा है आवश्यक। कोई भी अध्यात्म सरल रेखा पर चले बिना उस तक नहीं पहुंच सकता। सरल रेखा एक नहीं है.. कई कई है पर अनंत एक है.. यह व्यवहार भाषा द्वारा पथ प्रदर्शित करने का प्रयास है।

ब्रह्म वह सर्व ऊर्जा है जिसमें समस्त ऊर्जाएं निसृत हुई हैं। इस सर्व ऊर्जा से अल्पुर्जा का जुड़ जाना ही अध्यात्म अनुभूति है..। और उस अवस्था में ंसार की बाकी सब वस्तुएं ही नहीं मानव जन्म.. मरण से भी परे हो जाता है। मरण तटस्थता एक चिह्न है अध्यात्म पहुंच का..।

नरसिंह चिन्तामण केलकर ने एक सायं चाय का एक प्याला पिया। फिर मेज पर बैठकर एक कविता लिखी जिसका भाव यह था..

प्रभो मैं अब पूर्णतः तैयार हूं
मुझे अपनी गोद में बुला लो।

यह लिखकर वे लेट गये । यही लेटना उनकी चिर निद्रा थी ।

महर्षि दयानंद को सत्रह बार विष दिया गया अंतिम बार विष घातक सिद्ध हुआ! मुत्यु दिवस उनसे लाला जीवनदास ने पूछा.. आप कहां हैं? दयानंद ने कहा.. ईश्वरेच्छा में।

मृत्यु पूर्व उन्होनें कमरे के सब दरवाजे , खिड़कियां खुलवा दीं। अपने सामने से सब को हटवा दिया। उस समय उनका सारा शरीर भीतर बाहर दर्दीले छालों से भरा हुआ था फिर भी वे शांत थे। उन्होंने ऊपर देखा, चारों ओर देखा वेद मंत्रों का पाठ किया, ईश्वर प्रार्थना की। गायत्री मंत्र का उच्चारण किया। समाधि अवस्था में गए। समाधि से वापस आकर आंखे खोली ओऽम् कहकर। और कहां—

"हे सर्व शक्तिमान ईश्वर,
तेरी यही इच्छा है
तेरी यही इच्छा है
तेरी इच्छा पूर्ण हो।"

फिर करवट ली और श्वास रोककर निकाल दी.. और जीवन से मुक्त हो गए। गुरुदत्त नामक नास्तिक वहां उपस्थित था उस समय वह उसी पल से आस्तिक हो गया।

आत्मा, परमात्मा वे अनुभूति के आगार हैं जिनमें ऊर्जा ही ऊर्जा भरी है.. यह ऊर्जा का दिव्य संज्ञा से विभूषित है पर केवल दिव्य नहीं यह जाने क्या क्या है। इस ऊर्जा का सामान्यत: अनास्तित्व पर यथार्थत: आस्तित्व हर स्थल सम वितरित है। विक्षेपों में हम इस क्षेप को भूल बैठे हैं। गरीबी अमीरी सुख दु:ख में भटक कर अपने अक्षय भंडार को भूल गए हैं।

जेरमी टेलर का घर बार लूट लिया गया.. शरणार्थी होकर रहने लगा वह.. फिर भी उसका ऊर्जा स्रोत से संपर्क नहीं टूटा उसने लिखा।

"मेरे पास जो कुछ था, उन्होने छीन लिया। अब क्या है? मुझे अपने चारों ओर देखने दो। मेरे पास बचा रह गया है सूर्य, चन्द्र, प्रिया पत्नी और बहुत से दयालू मित्र। कुछ मेरे सहायक है। जब तक मैं जीवित हूं, मरा प्रसन्न चेहरा और मेरी प्रफुल्ल आत्मा और शुद्ध चेतना तो कोई छीन न सकेगा"

शरीर के भौतिक रूप से अलग "कुछ ओर" है अवश्य यह "कुछ और" क्या है? यह है कि नहीं? इसके होने पर मैं एक दलील दिया करता था कि तन के रहने पर भी मृतावस्था में वह चलता फिरता नहीं है.. यदि तन चलता होता तो तब भी चलता रहता अत: स्पष्ट है कि इसमें कुछ निकल जाता है पर यह दलील बड़ी बचकानी है और इसका खंडन यह कहकर किया जा सकता है कि चलती घड़ी रुक जाती है घड़ी रहती है उसमें से कुछ अलग तो नहीं निकलता है। प्रश्न फिर रहा कि यह 'कुछ और' है कि नहीं? यह बेशक है और मानव स्वयं अपने तन को देख सकता है साधना करते करते। मेरा, हाथ, मेरे पैर, मेरा शरीर कहना इसे सिद्ध करता है।

मिगुएल सिरानों ने जब एन्ड्रूज् हक्सले से सूक्ष्म शरीर लिंग शरीर पर चर्चा की तब हक्सले बोले— "डी.एच.लॉरेंस के अंतिम क्षणों में उनके साथ था। मृत्यु के कुछ ही घंटे पहले एक आश्चर्य जनक घटना घटित हुई। लारेंस एकाएक चिल्ला उठे— देखो वहां उस कोने में अपने आपको देख रहा हूं मैं अपने आपके शरीर से बाहर आ गया हूं।"

इन अनुभूतियों का अहसास सम्प्रदाय सम्प्रदाय बिखरा हुआ हैं अंश अंश। यथार्थत: यही साम्प्रदायों का मूल आधार है। जाने क्यों ऐसा नहीं होता कि सारी दीवारें ठह जाएं.. आठों दशाएं खुल जाएं सर्व ऋत आत्मन.. जाग उठे.. निराबाधित हो जाए.. जाने क्यों ऐसा नहीं होता समस्त चैतन्य ऊर्जा एक हो जाए.. पूरा का पूरा अंधकार (पवित्र आनंद) धरती पर हममें उतर जाए.. हमारी गढ़ी चीजें हमें ही लील जाती हैं कालांतर में। हम अपने बनाए घेरे से बाहर कदम रखते कतराने लगते हैं।

"उस दिन शाम को भगवान की सत्ता ठोस और भौतिक रूप में तुम लोगों के बीच में विद्यमान थी। मेरा आकार जीवन्त स्वर्ण से गठित था और समूचे विश्व से भी बड़ा था। मैं सोने के एक बहुत बड़े और भारी भरकम फाटक के सामने उपस्थित था जो जगत को भगवान से पृथक कह रहा था।

ज्योहीं मेरी दृष्टि उस फाटक पर पड़ी, चेतना की महज एक ही क्रिया द्वारा मैंने जान लिया और मन में ठान लिया कि "समय हो गया है" और दोनों हाथों से सोने का एक बहुत बड़ा हथोड़ा उठाकर फाटक के ऊपर केवल एक चोट लगाई और फाटक चूर चूर हो गया।

फिर तो अतिमानसीय ज्योति, शक्ति और चेतना एक आविरल धारा में पृथ्वी के ऊपर जोरों से उतरने लगी। " भाषण श्री.मां का २९ फरवरी १९२६ का

जीवन का सबसे बड़ा सत्य है अध्यात्म। जीवन का ही नहीं जन्म मरण क्रमों के अंतहीन इतिहास का अपरिवर्तनीय सत्य है आत्मा में। सारे के सारे जानने का सार है खुद को जानना। आदमी का खुद अपने आप पे उतर आना तभी हो सकता है जब वह कई खुदों को जागने में समर्थ हो जाता है।

"जब मैं बच्चा था, तो मेरी मां कहा करती थी कि अगर तुम सिपाही बनोगे तो अंत में जनरल बन जाओगे, और अगर पादरी बनोगे तो अंत में पोप बन जाओगे। पर में चित्रकार बन गया और लीजिए अंत में पिकासो बन गया।" प्रसिद्ध चित्रकला पाब्लों पिकासो के ऊपरोक्त कथन की गहराई कोई डूबा हुआ ही जान सकता है। अंतीम सीमा तक डूब जाने पर आदमी खुद बन जाता है

६. ऋचाओं में अध्यात्म ऋत

वेद आकाश है अनुभूतियों का..। बड़ी ही नहीं सर्वाधिक साशक्त अभिव्यक्ति हैं अध्यात्म की वेदों में। वेदों का अहसान मानव समाज कभी भी न चुका सकेगा वेदों ने मानव समाज को वह उधार दिया है जो फेरा नहीं जा सकता है। आज भी जीने के संकल्प, शब्द, भावों में वेद का अपरोक्ष आधार है.. अप्रत्यक्ष आधार हैं। वेद शाश्वत अनुभूतियों की और इंगन है का ऋषियों का। ऋषि नाम ही है अनुभूति कर्ता का .. अर्थ के अहसास कर्ता का एक एक वेद मंत्र आस्तित्व में अर्थित हो जाने पर पूरे के पूरे आस्तित्व को एक आप्त तंरग से तरंगित कर देता है। आस्तित्व का कण कण थिरक उठता है, नृतन कर उठता है, एक ही ताल में एक ही लय में सात करोड़ नृतन करते चैतन्यकण जब एक साथ एक लय में गा उठते हैं... साड़े चार लाख कोशिकाओं वाले मस्तिष्क के समस्त कोशिकाएं जब आपसी संबंधो के सारे परम्यूटेशन एवं कांबिनेशन (विवध सबंध एवं सम्मलित) एक में खो देते हैं तब एक आप्त—आभा में मानव सोम—आपूर्त हो जाता है.. वेद मंत्र का यथार्थ द्रष्टा हो जाता है।

सृष्टि एक बृहत्तम सत्य है.. एक सागर है आकाशगंगाओं का। इस धरती का विशालतम रेडियो टेलिस्कोप २०० मीटर व्यास का है यह टेलिस्कोप मानव को व्यापक आकाश अवकाश में ३८ अरब प्रकाश वर्ष की दूरी करीब २२.८ खरब मील तक देखने में समर्थ बना चुका है। सृष्टि उसके भी बाद तक है। शत अरब तारों द्वारा ज्योतित चक्रित एक आकाश गंगा है जिसका विस्तार तीन दशमलव एक चार लाख

प्रकाश वर्ष की लम्बाई में दस हजार प्रकाश वर्ष की मोटाई तक फैला हुआ। एक प्रकाश वर्ष दस हजार अरब किलोमीटर के बराबर होता है। सौ अरब तारों वाली हमारी आकाश गंगा में १३५,००,००० लाख नक्षत्र है जिसमें एक ग्रह है यह पृथ्वी। इस सृष्टि में लगभग एक अरब आकाश गंगाएं है जिन सबका करीब करीब सौ अरब तारों का विस्तार है। हमारे पृथ्वी के समान वातावरण वाले एक अरब चौसठ सौ लाख ग्रह होने की सम्भावना है.. और उन सब ग्रहों पर है चार पांच अरब आदमी। पृथ्वी एक बिन्दु है ब्रह्मांड में.. पृथ्वी पर बिन्दु है मानव कितना बौना है बिन्दु का भी बिन्दु मानव.. पर नहीं मानव बौना नहीं है तुच्छ नहीं है.. इतना बौना मानव इतनी व्यापक बात धारण कर सकता है जबकि इतना व्यापक ब्रह्मांड इतने बौने मानव की बात नहीं सोच सकता है। आंख आकाश देख सकती है आकाश आंख को फील नहीं कर सकता यही सत्य बौने मानव को महामानव कर देता है और मानव सृष्टि के इतने विशाल सागर में.. बह बह जाता है एक और नहीं चारों और बह जाता है..तैर जाता है.. तैरता सा दौड़ता है।

समुद्र में विलीन हो जाती है उर्मि जैसे आप्त पुरुष भी विश्व प्रेम की तंत्री को धारण करते हुए सर्वत्र फैल जाता है बह जाता है। [१२६]

जीवात्मा एक उन्मुक्त पंछी है.. मोक्ष एक आकाश है आनंद का जो इसे अठखेलियां करने के लिए मिला हैं यह आकाश ही इसका घर है, इसका भोजन है, इसका पानी है.. यही आनंदकाश इसके लिए सभी कुछ है।

यह तन युक्त आत्मा एक पथिक है अमरत्व का। अमरत्व की ओर यह कब से बढ़ रहा है.. और इसका यह तन.. एक अद्‌भुत रथ है.. यह अच्छी इन्द्रियों वाला रथ है.. यह सुखम् रथ है.. इस रथ की हर क्रिया सुखम् है.. काश पहचान पाता मानव इस सुख को। शरीर के लिए ग्रहण करना सुखद है हर निष्कासन सुखद है.. श्वास सुखद है यदि मानव ने स्वयं को मारा नहीं है तो.. जन्म से मरण तक यह तन सुखद है.. तभी तो वेद कहता है–

"आरोह इमं सुखं रथम्"

इस सुखं रथम् का आरोहण करो.. आज जहां जहां यह रथ हमें आरोहित करने लगता है यह हमारे लिए दुःखद हो जाता है। हमारी इन्द्रियां देव है.. इनका आधार बाह्य नहीं कहीं गहन है।

"मुक्ति को जाते हुए इस डूबे हुए जीवात्मा हंस के व्यापक पंख शताब्दियों से खुले हुए है.. फैले हुए है यह हंस सब देवों को अपने हृदय में लिए हुए सारे के सारे ब्रह्मांड को देखता हुआ चला जा रहा है। [१२७]

वेद ज्योति ग्रंथ है, हिरण्य ज्योति ग्रंथ है, ऊषागान है, दिव्य प्रकाश है, अनुपम आलोक का पवित्र आह्वान है.. सौम्य सहज निवेदन है। कितनी सरल है भाषा.. कितना सरल है प्रवाह कितना सहज है यह भाव.. उपनिषद में वेद की भावना की यह अभिव्यक्ति..

"असत् की ओर ना; सत् की ओर, तम की ओर ना; ज्योति की और, मृत्यु की ओर ना; अमृत की ओर चलो"

चलो मानव चलो.. मोक्ष पुकारता है.. राह राह पुकारता है बढ़ो..। केवल पारलौकिक नहीं इहलौकिक साहस का प्रदाता भी है वेद.. यदि यह जीवन सुखद नहीं है तो मानव मोक्ष क्या पाएगा..?" बढ़े चलो बढ़े चलो! जो परिश्रम से थककर चकनाचूर नहीं होता उसे सफलता नहीं मिलती तो भाग्य के भरोसे बैठ जाता है उसका भाग्य भी बैठ जाता है.. बढ़े चलो बढ़े चलो.. चरैवेति चरैवेति।

मानव रे.. उठो समृद्ध बनो शक्तिशाली बनो..। "हे मनुष्यो! जब तुम मृत्यु को पैर से ढ़केलते हुए चलोगे तो दीर्घायुष्य, समृद्धि, सुप्रजा से आप्यमान होगे..। तुम बाहर से शुद्ध एवं भीतर से पवित्र यज्ञ मय हो जाओगे" [१२८]

इत् उठ तित् आलोक ही आलोक हो जाए ऐसी उदात्त भावनामय है वेद.. और यह आलोक.. इस आलोक से उभरता.. एक आनंद.. इस आनंद का फैलाव ही तो अनुभूति का आरंभ स्थल है..। उषा आह्वान का यह मंत्र..

"दिव्य हे उषे! ज्योतिष्मान इन्दु रथ पर ऋत वाणियों को सरसाती हुई अमृत हो फैल जाओ.. संपत द्रुत गतित हो यहा..। हे देवी हिररायमणी.. शक्तिमय गतित हो तुम यहां" [१२९]

अमरत्व की सशक्ता वाणी है अनुभूति.. अनुपम अद्वितीय आखिल से युजन है अनुभूति। उसमें युजन ही तो स्वयं से युजन है। उसकी छाया अमृत है उसकी अछाया ही मृत्यु है..। इस अछाया को ही तो छिन्न भिन्न विनष्ट करना उस अमृत छाया का पाना है।

"उत्क्रामात:! .. उठो इसमें आगे बढ़ो थमों नहीं हे पुरुष हे मानव, मत गिरो नीचे.. उठो मरण पाश के टुकड़े टुकड़े कर दो, बिखेर दो.. प्रकाशालोक है दिव्यालोक है एक ब्रह्म का उस आलोक की छांह सुखद में रहो.. टूटो मत इस छांह अमृत से.. उठो हे पुरुष.. **उत्क्रामातः**" [१३०]

उत्थान का संदेश है वेद.. उड़ान का आह्वान है वेद, प्रगति का गान है वेद। इस तन से इस तन के आत्मावान तक पहुंचने का संदेश वेद है। "अजेय पुरी है अयोध्या.. देवता वास करते हैं जिसमें.. आठ चक्र और नौ द्वार हैं जिसमें..। इस पुरी में ज्योति से अमृत एक स्वर्णीम स्वर्गीय कोश है। तीन अरों वाले... कल आज और कल में व्यापक इस सुनहरे कोश में जो आत्मवान पूर्ण है उसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष ही जानते हैं।" [१३१]

आत्मवान पूर्ण तक पहुंचने के लिए.. मंजिल के करीब एक छलनी है.. छानने के लिए.. वहां से छनकर निकलना है.. आस्तित्व.. अनछने कोई नहीं निकल सकता है.. सीमा पर रुक जाता है वह जो इस छननी से छन नहीं सकता है और जो छन जाता है वह परे चला जाता है.. आत्मवान पूर्ण तक पहुंच जाता है। यह छननी है आत्मा।

"आत्मा की छननी में निरन्तर मलों को छानते.. नूतन दीर्घ आयु को धारण करते हुए परे चले जाते हैं आप्त महापुरुष" [१३२] और परे है आनंद लोक.. अमृत लोक जहां प्राप्त आनंद संज्ञाओं की सीमा से बाहर का है।

अयोध्यापुरी यह तन सुखद रथम कितना उत्तम साधन है मोक्ष के लिए। आकाशगंगाओं के व्यापक वृतों के कई कई आवृतों में सज्जित यह परम व्योम, इस तन का आहार है पावन आहार। इस व्यापक व्योम में लघुतम अंश से व्यापकतम सर्वांश तक नियम बद्ध है.. कहीं कोई विचलन नहीं, कहीं कोई अनियम नहीं है इस व्यवस्था में। इस व्यवस्था के ऋत को पहचानना इस ब्रह्मांड के सत्य को परिष्कृत कर देता है।

"सात दुधारु गौएं तीन तीन स्थिति में इस व्यापक परम व्योम का सत्य रूप दुग्ध दुह रहीं थीं.. जब इस दुहने में.. दुहने के ज्ञान में ऋत का पुजन हुआ तो इस दुग्ध के परिष्कार के लिए अन्य और चार स्तर निर्मित कर लिए।" [१३३]

तन में सात दुधारु गौएं हैं.. आंख कान नाक मुंह। हरपल हर क्षण.. विभिन्न रूपों में ये गौवें व्योम दुहती हैं.. साधना साधना ये व्योम दुहती हैं.. व्योमानंद दुहती हैं ये जागृतावस्था में, सुप्तावस्था में (स्वप्नावस्था में) सुबुद्धि अवस्था में। व्योमानन्द पर बाह्यात्मक है.. टूटा टूटा है टुकड़े टुकड़े आनंद जुड़ जाता है.. जागृतावस्था, सुप्तावस्था, सुषुप्ति अवस्था में अपने अपने स्तर दिव्यता जुड़ जाती है इन दिव्यावस्थाओं से क्रमशः छनने लगता है अनुभूति दुग्ध.. और पावन होता.. तुरीय.. अनहद नादावस्था में परिशुद्धतम होता है। परिष्कारित दुग्ध पान करने की अवस्था है अध्यात्म.. या आत्मा में यही अवस्था सातत्य इन चारों मंजिलों, चारों स्वरों के भी पार मानव को तुरीयातीत में पहुंचा देता है।

"इस अविनाशी ईश्वर के सात दोहन पात्र हैं। और उनमें सात प्रवाह दुहे जाते हैं, इनको सप्त ऋषि करके जानते हैं।" [१३३ क]

प्रत्येक शरीर में सात ऋषि रह रहे हैं, ये सात इस शरीर रूपी गृह की सहजतः ही रक्षा करते हैं।"[१३३ख]

हमारे मत में सप्त ऋषि और सप्त दोहन पात्र ये हैं– १) **आत्मा–** यह ऋषि परमात्मा से 'आनन्द' रूपी दुग्ध अपने में दुहता है। २) **बुद्धि (संज्ञान)**– यह ऋषि परमात्मा से 'चित' अथवा विज्ञान रूपी दुग्ध अपने अन्दर निचोड़ता है। ३) **अहंकार**– यह ऋषि परमात्मा से 'मैं पन' का भाव रूपी दूध निकालता है। ४) **मन**– यह ऋषि उसी से 'मनन शक्ति' रूपी दुग्ध दुहता है। ५) **प्राण**– यह ऋषि वहीं से 'जीवन' रूपी दूध निकालता है। ६) **ज्ञानेन्द्रिय (संघ)**– यह ऋषि वहीं से विषय ज्ञान रूपी दूध निचोड़ता है। ७) **कर्मेन्द्रिय (संघ)–** यह ऋषि उसी से 'कर्मशक्ति' रूपी दूध निकालता है। [१३३ ग]

"सप्त दूधों" का स्रोत वह एक ही परमात्मा है। इन दुग्धों के आस्वाद में उसी का आस्वाद है। जब सप्त ऋषि सम्मिलित रूप में इन दुग्धों को दुहते हैं तो वे दुग्धों का नहीं वरन ब्रह्म का ही दोहन करते हैं। और वही अवस्था अध्यात्म अनुभूति की अवस्था है। इस अवस्था में मानव एक दोहन नशे में डूबा काल भूल जाता है। एक अविनाशी रस में प्रातः सायं डूबा रहता है। वही रस दुहता है, दुहता दुहता उसे पीता है।

"मैं प्रातः दुहता हूं, सायं दुहता हूं, दोपहर दुहता हूं, (चौबीसों घंटे दंहता हूं)। जो प्राप्त रस हैं वे अविनाशी हैं ऐसा हम जानते हैं।" [१३३ घ]

मानव सही अर्थों में गद्‌गद् तभी होता है जब वह आह्लाद से ओतःप्रोत होता है.. उसकी हर क्रिया में आनंद विह्वलता होती है.. आनंद से छल छल होता है वह मधुमय...

"मेरा गमन आगमन आह्लादमय है.. मेरा पारायण– व्यवहार रहन सहन जीवन यापन कण कण आह्लादमय भरा पूरा है मेरी वाणी गद्‌गद् है आह्लाद से.. मैं.. यह मैं पूरा का पूरा आनंद विह्वल आह्लाद दिव्य का साक्षात् स्वरूप हूं।" [१३४]

आह्लाद दिव्य का साक्षात स्वरूप होना.. आदि ऋषिओं के लिए कितना सहज था.. आज हमें जटिलता से वापस लौटना है.. यह जटिलता प्रगति नहीं है.. हमनें कुछ बहुत बड़ा भाग अपना कहीं खो दिया है आदिकाल से आज तक के सफर में..। हमें वह दिव्यता वापस लानी है। अधमूंदी आंखों को पूरा खोलना है। एक बार फिर "आत्म यज्ञ" रचना है..। वह आत्म यज्ञ तब हुआ था.. वह तब.. क्या अब नहीं हो सकता? बिल्कुल हो सकता है। हम भी अमृत पुत्र हैं.. सब साधन हमें भी उपलब्ध हैं..

"जब उस आदि बेला में आप्तों ने आत्मा की हविषा (जो यथार्थ में होमने योग्य है) द्वारा धारणीय ब्रह्म के अतंस यज्ञ का अनुष्ठान किया तब इस दिव्य यज्ञ की निग्धता (घृत) बसन्त ऋतु रही, ईंधन ग्रीष्म ऋतु तथा आहुति शरद ऋतु रही।" [१३५]

ऋतुओं से यज्ञ करने वाला महाऋत.. ही हो सकता है ऋषि ही हो सकता ब्रह्म अनुभूति से आस्वादित ही हो सकता है। आत्म–दान यज्ञ भी तो वही कर सकता है।

"होने" की धारणा शक्ति कोई शरीर में सीमित नहीं रहती हैं वरन वह फैलती चली जाती है.. शरीर से ऊर्जा की धाराएं बड़ी दूर तक बहती हैं.. ये ऊर्जा धाराएं आवरणीत करती हैं.. पूरी की पूरी सृष्टि को... और अंत में होने में ही सिमट जाती हैं।

"व्योम के ऊर्ध्व खगोल की और अंधो खगोल को.. उत्पत्ति काल में ही आवरणित करके समस्त लोकों को परिप्राप्त करके, दिशाओं को सूर्य को परिप्राप्त करके या आवरणित करके जो अस्तित्व विराजमान है उसने विस्तृत ऋतों को व्यापकता से समेट कर संकुचित करके देखा तो वह था (और फिर) वह हो गया। " [१३६]

संसार में कितने ग्रंथ हैं जो अपने आप से परे चले जाते हैं.. वेद मंत्रों की आप्तता यही है कि वेदमंत्र मंत्रों से भी बाहर हो जाने के लिए आह्वान करते हैं। मानव का अपनी सीमा से वे असीम की ओर मानो मानव को ढकेल ढकेल देते हैं।

"जिस परम व्यापक ब्रह्म में ऋचाएं एवं उनके विषय तथा विश्व के समस्त देव एवं मुक्त पुरुष आश्रित हैं आधार पाए हैं उसे जो नहीं जानता वह सिर्फ ऋचा से क्या करेगा? जो उस परम को पहचानते हैं वे उसमें ही समाहित हो जाते हैं।" [१३७]

सोम एक संज्ञा है मधु की। सोम यथार्थ में आनंद का महासागर है.. सोम एक पवित्र नशा है। सोम बुद्धियों को सत्य और ऋत से भर देने वाली अनुभूति है। समवेद का पावमान पर्व.. सोम गान हैं मानो!

"हे सोम तू अत्यंत स्वादिष्ट परम मद से परिपूर्ण है.. तू मदिष्ठया है.. बह! बह!! चहुं दिशि बह... पवित्रता की धारा हो कर बह.. सब चैतन्य जगत को आपूर्त कर। तेरा प्रवाह सतत इसलिए उद्गमित है कि मैं इन्द्रियों का अधिपति इसका पान करूं" [१३८]

खं अधिपति इन्द्र जब इस स्वादिष्ट पवित्र मदिष्ठ सोम का पान करता है तो आनंद से ओत:प्रोत हो जाता है और लघु लघु बंधनों से विमुक्त हो जाता है.. बंधन में रहते तक वह बंधनों को सुखदाता समझता है पर जैसे ही इन्हें छोड़ता है.. हंस पड़ता है मन ही मन कहता है मैं भी कैसा पागल था जो कीचड़ में सुख समझे बैठा था।

सोम उसे प्राप्त नहीं होता हैं जो प्राण शक्ति का धनी नहीं है.." प्रचुर प्राण शक्ति वाले के लिए तू हर्ष का सरोवर है.. तू अपनी ध ाारणीय संजीवनी से.. धर्म–धन बनकर पवित्रता की धार हो बह.. तू अपनी दिव्य विभूति से ओज से अनेकानेक ब्रह्मांडों को धारण करता प्रवाहित हो" [१३९]

धरा से द्युलोक तक की उड़ान में उड़ने वाले की संज्ञा हैं **अमहीयुः**। जिसने अनुभूति में धरा का अतिक्रमण किया है.. उससे भी पार गया है.. जो इस लघु तन में रहते रहते ही उच्च अतिमानस से संयुक्त सबल है.. सक्षम है उस दिव्य को धारण करने में.. वह ही कह सकता हैं..

"हे सोम! उच्च सातवें स्तर पर उपलब्ध.. आह्लादप्रद अमृत से उत्पन्न सम स्पष्ट, सहज वितान को और ऋचाओं के ऋत को यह मैं. . इन.. यहां के तन में प्राप्त कर राहा हूं [१४०] अमृत घट है मेरा तन और अमृत हूं मैं।

पूरा का पूरा विश्व ऊर्जाओं का एक सिन्धु है.. महान विशाल.. स्व ऊर्जा का इस विश्वीय ऊर्जा से समाहितपन.. मानव को गार ही कर देता है.. ठोस हलके पन की यह विस्तृतता कभी भी अभिव्यक्त नहीं की जा सकती.. आदि सृष्टि से इस आज तक यह ज्यों की त्यों भोगनीय है.. अनुभव्य है.. अन्त: सृष्टि तक.. एवं पुन: आदि मध्य अंत तक.. यह रहेगी.. रहेगी.. और.. मानव इसे इंगित करता रहेगा इसे छू–छू.. पी–पी.. आह्लाद तंरग में बहता रहेगा.. बहता रहेगा। आप्त इन आह्लाद तरंगो की ओर इतने सशक्त इंगन करते हैं.. कि प्रजाओं को भी इसी हर्ष सरोवर में बहा ले चलते हैं।

"सोम से आपूर्त गहन डूबे आप्त उर्मियों के समान प्रजाओं को बहा ले जाते हैं (आखिल की और) जैसे महान मेघ स्वघटित जलों को।" [१४१]

सागर उर्मियों पर तैरता तैरता फैलता चला जाता है जैसे प्रभात का रक्तीम प्रकाश.. ठीक वैसे ही कर्म कर्म में फैलता जाता है अनुभूति के सूर्य का प्रकाश।

"सोम हे ब्रह्म! तेरा वरने लायक नशा है तू सोम अमृत से चारों ओर एक निर्मल प्रवाह चला" [१४२] अमृत रस से सम्पृक्त हो जाता है जब मानव तो उसमें चारों ओर आनंद ही आनंद बहता है.. वह सहेज नहीं पाता है और और आते आनंद को... अत: आनंद ही फैलता चला जाता है।

"अ– विराट, ब– तेज, और म्– प्रज्ञा..। तीन दिव्य स्वर उभर रहे हैं.. मानों दुधारु गौएं बछड़ों को बुला रही हैं। ओऽम् अनाहत नाद बज रहा है सतत" [१४३]

दिव्य आह्वान गीत है वेद। आह्वान है अक्षर अक्षर में "उस" का जो "इस" भी है। यह तन उस ब्रह्म का सबसे सुन्दर मंदिर है..

"हे पूरी सृष्टि में नेह ओत प्रोत करने हारे मुझे प्राण, इन्द्रिय, देह धारी के लिए मधुरतम पवित्र होकर पव.. याने रिस रिस कर बह। अर्चना के दव्य देवालय में प्रविष्ट हो रहा हूं मैं" [१४४]

अर्चना का दिव्य देवालय है यह प्रकृति पूरी की पूरी..। हर कुछ इसमें सत्यों की पताका है। एक ही सत्य की पताका उस तक पहुंचा देती है सर्व सत्यों का भान कराकर।

"गिरिष्ठा– सघन आनंद से घनत्वित आप्त ऋषि वचनों में व्याप्त दक्षता पवित्र आह्लाद के लिए मेरी अंतस् की सौम्य तरंगो में हरित नव कोपल सी फूट पड़ी है" [१४५]

यह शब्द चयन जिस अनुभूति के लिए है.. उसका रस कितनी ताजगी से भरा है.. हरित नव कोपल अतंस तरंगो की भूमि पर फूट पड़ना.. कितनी गद्गद् कर देने वाली अनुभूति का स्वर है वेद।

मानव को बस पवित्र होना है, उजला होना है, सरल होना है, सौम्य होना है। इतना सा यदि मानव कर ले तो आप्तता का दिव्य रस स्वयं ही उसमें क्षरित होने लगेगा।

"गिरिष्ठा सोम चारों ओर से हरहराता पवित्र में आ टपका है। यह इत् उत् सर्वथा नशा ही नशा (आह्लाद आनंद का) रखने वाला है।" [१४६]

सततता इस अनुभूति का एक आधार है। क्षणिक उत्पत्ति के पश्चात यह सतत ही नहीं सार्वजनीन भी होती है। इत् उत् सर्वत्र बिजली का सा तेज प्रकाश समरूप अनुभूत करना.. इस अनुभूति में सम्भव होता है।

"तू दिव्य रस है सतत् प्रवाहित हो तेरा आह्लाद आत्मा को प्राप्त हो। धर्म द्वारा.. (हे आप्त) (मेरे प्राण) वायु पर आ आरोहण कर। पवित्रता के साक्षात स्वरूप ने आकाश की विद्युत की तरह विचित्र, व्यापक, सार्वजनीन आलोक को जन्म दिया है" [१४७]

पूरा का पूरा अस्तित्व एक दिव्य तरंग से स्पंदित हो उसे एक वाणी से.. और उसके पश्चात परम विस्फारित हो जाए पूरी की पूरी सृष्टि में सहजत: ही। ये तरंगे कोई भौतिक तरंगे नहीं होती अध्यात्म तरंगे होती हैं.. इन्हें कोई जड़ यंत्र.. कोई कैमरा ग्रहण नहीं कर सकता। तन

के गिर्द का एक ज्योति वलय जो कैमरा ग्रहण करता है बड़ा स्थूल है। मैं उस वलय की बात कह रहा हूं जो मृत्यु के तीन दिवस पश्चात समाप्त होता है जो विशिष्ट प्रोटोप्लाज्म जिसे जीवन सत्व कहा जा सकता है के कारण होता है। अध्यात्म तरंग केवल एक मशीन ग्रहण कर सकती है और वह है प्रज्ञित आदमी या ऋषि या आप्त या पुरुष जो कि समस्त मशीनों यन्त्रों को जन्म देती है।

"मधुर मौन से ध्वनित अंतस को आविष्ट कर उत्पन्न हुआ ज्योतित परम रस समस्त विश्वीय विभूतियों को समेटता हुआ पुरुष दिव्य को समर्पित किया जा रहा है" [१४८]

ज्योतित परम रस ही सोम है, जो शांत है एवं अमृत है। ज्योतित वह हो सकता है जो अंधेरे को उतार दे या नष्ट कर दे.. जो दीप जलाएं। बाह्य दीप जलाने से भी किसी कोने अंधेरा रहेगा ही.. अंतस दीप जला ले मानव तो मानव ही ज्योति स्वरूप हो जाता है.. और स्व ज्योतित् होते ही मानव में अमृत रस भी भर जाता है।

"अंधकार की काली केचुल को उतार फेकते हुए ज्योति दिव्य के चलते फिरते पुतलों ने ऐसा परम पराक्रम किया है। जैसे वे समस्त भ्रमण करने वाली दिव्य किरण का स्वरूप हो गए हों।" [१४९]

वेद बीज है अमृत लताओं के। ये बीज रोपे जा सकते हैं अंतस धरती पर.. प्रकाश अमृत लताएं सत्य साधना तप से सींच सींच कर बढती है और चहूं दिशि फैल जाती है तब एक दिवस मानव आनंद के महासागर में बिन्दु (महासागर को अनूभूत करता है) बना सार्थक हो जाता है।

"यह वेद वाणी रूपी गौ हजारो अक्षय अमृत धाराओं को प्रदान करती है और सब भुवनों को पूर्णत: पावनता प्रदान करती है और इससे समुद्र के समान रस प्रवाह पर्याप्त प्रमाण में लोगों को प्राप्त होते है।"[१५०]

साधना के पथ पर कई कई दिव्य शक्तियां सहजत: प्राप्त होती हैं मानव को..। साधक जो इन शक्तियों पर ही थम के नहीं रहा जाता वरन और आगे बढता चला जाता है उसे इन शक्तियों के मध्य एक अलौकिक शक्ति का आभास होता है।

"दिव्य शक्तियों में आश्चर्यजनक शक्ति प्रगट हुई है। जो मित्र, वरुण तथा अग्नि का याने संयोजक, नियोजक तथा वियोजक शक्तियों का नेत्र स्वरूप है। यह शक्ति द्यौ लोक, पृथ्वी लोक तथा अन्तरिक्ष में पूर्णत: व्याप्त होकर विद्यमान है। यह विश्व ब्रह्माण्ड का प्रेरक और चल अचल चराचर जगत का आत्मा है।" [१५१]

ये दिव्य अनुभूतियां एक स्थल नहीं वेदो में स्थल स्थल हैं। इन अनुभूतियों की तुलना में अनुभूतियों के आज के स्वर चाहे वे रामकृष्ण परमहंस के हों, विवेकानंद के, रजनीश भगवान के, या श्री मां के, या स्वामी रामतीर्थ के, सब के सब कम ही ठहरते हैं। वेद अनुभूतियां मानों अपनी पूर्णता में बाकी सारी की सारी अनुभूतियों का आधार ही रही हैं।

इतनी सशक्त, स्पष्ट अनुभूतियों के दिव्य स्तरों को किसी बच्चे ने ही गड़ेरियों के गीत कहा होगा। किसी शिशु ने ही ऋषियों की अबोध ा जिज्ञासा का कहा होगा। वेदों को यदि उस समय के ऋषि गड़ेरिए थे जो आज के दिग्गजों से भी पहुंचे हुए थे तो उस समय का समाज क्या ही दिव्य रहा होगा?

वेद पूरा का पूरा कम कहीं अधिक उस परमात्मा की विभिन्न स्वरों में अर्चना करता है। ये अर्चना के बिन्दु मानव को अमृत सिन्धु के दर्शन करा देते हैं। अर्चना बिन्दुओं का एक दीर्घ सिलसिला है वेद मंत्र चरण। ये दिव्य बिन्दु कैसे आह्लाद के महासिन्धु है यह देखते ही बनता है, गागर में नहीं वरन यहां तो बिन्दु में महासागर मिलता है।

ब्रह्म की संज्ञाएं

"व्यापक ऋतों का संचालक", "विश्व ब्रह्माण्ड रूपी रथ का रथी", "दिव्य शक्तियों का अग्रणी हुआ", "शाश्वत सदा रहने वाला", "प्रत्येक ऋतु में यजनीय", "आरंभ काल में ही विश्व को धारण करने वाला", "उग्र शक्ति सम्पन्न सत्ता", "विस्तृत ज्ञान का अधिपति" "सब ओर से अवयवों में व्याप्त", " अजन्मित होने पर भी गर्भ में विचरणकर्ता", "जिसकी सब ओर आंख है, जिसका मुख सर्वत्र है, जिसके बाहु सब दिशा में हैं, जिसके पद सर्वत्र हैं", "अच्युत + च्युत = अगतित होते समस्त गतियों का विधायक", "विज्ञान को पवित्र करने वाला", "समस्त प्राणियों का केन्द्र स्थानीय" "सुचारू रूप में शासन करने वाला" "संकीर्ण दृष्टि को व्यापकता देने वाला", "अभि + चाकशीति = सब और से निरीक्षण कर्ता" "नित्य नियमों का आभ्यान्तरिक स्रोत", "वयुनावित = प्रकृष्ठ ज्ञान वाला" "दिव्य विशिष्ट गुण का सृजन करने वाला" "अतंस प्रकाशक", "आनंद प्रदायक" आदि आदि हैं। ये संज्ञाएं क्या कोई सामान्य व्यक्ति गरड़िया अभिव्यक्त कर सकता हैं? एक एक संज्ञा में अंतहीन फैलाव है इस फैलाव की अनुभूति ही संज्ञा की सार्थकता है।

"ऋत के धारण करने वाली बुनियादें बहुत गहरी हैं दृढ़ हैं, ऋतों के स्वरूप में अनेकानेक आह्लाद कारक सौंदर्य निहित है। (आप्त जन) ऋत के प्रभाव से दीर्घकाल तक स्थायी दिव्य की कामना करतें हैं। ऋत के द्वारा ही ज्ञान रश्मियां ऋत (की मूल सत्ता) में समाहित हो जाती हैं।" [१५२] ऋत की मूल सत्ता व्यापक ऋतों का संचालक वह ब्रह्म है। एक नहीं वरन कई कई ब्रह्मगीतों से भरे हैं वेद। पूरे मंत्र ही नहीं मंत्रो के चरणों में भी अनुभूति की संपूर्णता भरी हुई है।

"अवि नाम की एक दिव्यता है जो ऋत से परीवृत है। उसी के रूप द्वारा ये हरित वृक्ष हरितमा की मालाएं पहने खड़े हैं।" [१५३]

वेद मंत्रों का साधक किस तरह बहता है आनंद के सरोवर में इसका एक उदाहरण है श्री चमूपति उनकी अनुभूतियों के स्वरों में प्रवाह देखते ही बनता है।

"सुख का बिन्दु सुख का सागर बन गया है। यह रस भौतिक नहीं है दिव्य है। इस भौतिक जीवन में यह दिव्य रस कैसे आ गया?

भौतिक जीवन का उद्देश्य दिव्य है। शरीर हैं तो मिट्टी ही का पर इससे उपलब्ध दिव्य रस भी हो सकता है। पृथ्वी द्युलोक की सीढ़ी है। आ मेरे मिट्टी के शरीर! तुम्हें पूजू! तू मुझे दिव्यराग सुनाए जा! इस संसार में मेरा कौन है मेरे प्रभु के विश्रामघाट! मेरे प्रियतम के सुरीले तंबूरे! बरस! बरस!! गा! गा!! कुछ सुना.. कुछ पिला.. तेरे गान में रस है.. आ! मैं इसका पान करुं। तेरे संजीवन रस में ब्रह्म नाद है। आ! मैं इसका श्रवण करुं मेरे मिट्टी के शरीर! तू दिव्य है। मैं थक गया हूं। अपने गान के घोंसले में मुझे बैठा ले। अपने रस के झूले में मुझे झुला ले। तू ही मेरा असली घर है.. रसीला सुरीला घर।"

यह अनुभूति वेद के एक लघु से मंत्र से उभरी कि "तेरा दिव्य शरीर मैं भोगता हूं" या "शरीर सुखं रथम् का आरोहण कर"।

"तेरा प्रेम रस अत्यंत रसीला अत्यंत नशीला है। जिसने इसका एक घूंट पी लिया, उसे दुनियां की सुधबुध न रही। वह पागल है। अपनी मस्ती में बहा जाता है। एक तरंग है कि वह उस पर सवार है। कैसा पवित्र कैसा बेलाग नशा है।"

"सृष्टि की प्रत्येक क्रिया, प्रत्येक चेष्टा, तुम्हारा गान है मनो मोहक उद्गीथ है। चेष्टा आरंभ हुई। मानो गायक का गला खुल गया। गला खुलना क्या है? "अ" का उच्चारण। तान उड़ने लगी। "उ..उ..उ" यह तान की उड़ान है– क्रिया का लम्बा क्रियमाण रूप। गायक लय के मजे ले लेकर अंत को अपनी ही लय में लीन होने लगा। उसके ओठ मिल गए.. गा की मिठास ने चिपका लिए। यह ओठों का चिपकना और क्या है? "म" का मूर्त रूप।" "उसका वाचक (द्योतक) ओऽम् है" इस लघु सूत्र की ही व्याख्या है उपरोक्त प्रवाहमय कथन।

"हे प्राणों के प्राण! मेरे प्राणों को अपनी स्नेह सुधा से अनुप्राणित कर दो। मेरे जीवन को अपनी संजीवनी से उज्जीवित कर दो। मेरी इन्द्रियां तुम्हारी अर्चना के फूल बन जाए। मेरे प्राण तुम्हारी पूजा के नैवेद्य हो। आज मेरा नया जन्म हो। अर्चना के जीवन का जन्म। पूजा के नवजीवन का उदय।

मैं झुक जाऊं, लचक जाऊं तुम्हारें चरणों में। तन, मन धन सब अर्पण कर दूं! सफलता अर्पण में है। अर्चन में है। अर्पण अर्चन एक है"

"आत्म समिधा परमात्मा अग्नि को समर्पित है" इसी भान में कितनी दूरतम बहे हैं साधक।

"ईश्वर की कृपा का अनुभव एक ऐसा अमृत है जिसकी उपमा किसी सांसारिक रस से नहीं हो सकती! यह अनुभूति अलौकिक है। जब एक बार यह रस नस नस, नाडी नाड़ी में बह निकला, तो फिर इसका प्रवाह रुकने का नहीं।.... यह नशा मेरे प्राणों पर सवार हो गया है। मेरे देह का धर्म बन गया है। आत्मा के स्वभाव में आ गया है। अब मैं सोऊं, जागूं, उठूं, बैठूं, मेरा हृदय झूमता ही रहता है।... प्रभु प्रेम के दीवाने.. जो नशा तेरी आत्मा में है तेरी इन्द्रियों में है, तेरे प्राणों में हैं उसे तू अपने तक परिमित कैसे रखेगा? तू धर्म यात्रा कर। आत्माह्लाद का औरों के हृदयों में संचार कर.. अपनी मस्ती का मस्ताना सारे संसार को बना। हवा के झोके तेरी मस्तानी रागिणी से झूम उठे। गा! गा!! मस्ताने गायक! गा! आकाश पाताल को अपने गीत गीत से भनमय कर दे।" [१५४]

"निरन्तर प्रवाहित तू दिव्य रस है" यह वेद सूक्ति का वह बिन्दु है जो साधक को आकाश पाताल का सिन्धु दे देता है। ऐसे कई कई सूक्तियों से पटा पड़ा है वेद। छोटे छोटे से वाक्यों में बड़ी बड़ी बातें कही गई हैं।

"तू स्त्री, तू पुरुष, तू कुमार तथा कुमारी है तू ही वृद्ध होकर दंड के साथ चलता है पर तू चारों और मुखवाला है" [१५५] यह तू ही तो मैं है।

"मैंने पृथ्वी बनाई और द्यु बनाया, मैंने ऋतुएं बनाई और सात सागर भी मैंने बनाए" [१५६]

"वह सब मिलकर एक ही होता है" [१५७]

"अनंत चारों ओर फैला है" [१५८]

"सब को सम आलिगंन देने वाला देवता मुझे प्रिय है वह कल्याणकारी देवता मर्त्य के घर अमर है। [१५९]

"प्रभु मनुष्यों के अदंर रहता है।" [१६०]

"रोहित ने द्यु और पृथ्वी उत्पन्न की और परमेष्ठी ने उसमें एक धागा फैलाया" [१६१]

"वह इकट्ठा सामर्थ्य है (सामर्थ्य पुंज है) वह एक है अकेला एक है" [१६२]

"प्रभु मैं तुझको प्राप्त होता हूं, तुझमें प्रविष्ट होता हूं, सब इन्द्रियों के साथ, सब पुरुषत्वों के साथ, सब आत्मबल के साथ, सब अस्तित्वों के साथ, जो (सही अर्थो में) मेरा है उसके साथ मैं तुझको प्राप्त होता हूं।" [१६३]

"इसकी स्थिरता दीखती है पर गति नहीं दीखती है" [१६४]

"जिसमें केवल स्वयं प्रकाश है।" [१६५]

"सौ हजार, दस हजार, लाख, असंख्य स्व शक्तियां इसमें हैं।" [१६६]

"ब्रह्म जानने पर मनुष्य समीपस्थ और न जानने पर दूरस्थ है।" [१६७]

"ब्रह्म ज्ञाता, ब्रह्म में स्थिर हो अव्याहत गतिमय सर्वत्र विचरते हैं।" [१६८]

ये तो केवल कुछ इंगन हैं वेदों के महासमुद्र की ओर। ये तो केवल सतह का उर्मियां हैं.. सिन्धु की गहनता में तो इनमें से होकर मानव को स्वयं ही उतरना पड़ेगा।

अध्यात्म ही है ये तो आदि तब से लेकर आज तक का वही है अपरिवर्तनीय हैं.. बाकी सब कुछ तो जाने कितनी करवटें बदल चुके हैं। विज्ञान तब से अब तक नई नई परिभाषाओं के आवरण ओढ़ने पर भी अंतिम परिभाषा में ढल नहीं पाया हैं न ढल पाएगा, राजनीति,

सम्प्रदाय, धर्म, सभी कुछ देश, काल, समय, की काल्पनिक मान्यताओं द्वारा बुरी तरह परिवर्तित हुए। यदि सृष्टि के प्रारंभ से आज तक मानव अमृत पुत्र में कोई भी तत्व अमर है तो वह तत्व उसका "मैं हूं" है "अंह अस्ति" है। और इसमें डूब जाना ही अध्यात्म है। जो वही का वही है और यही का यही है। यह अध्यात्म आने वाले कल में वही का वही और यही का यही ही रहेगा।

"देव का (दिव्य) काव्य देखो जो मरता नहीं है और न जीर्ण होता है।"

वैदिकि आदि काल से बौद्ध, जैन से.. अद्वैत से.. त्रैत से.. गुजरता वर्तमान तक के धर्म साहित्य अध्यात्म अनुभूतियां बिखरी हुई हैं। आदि मानव, उत्तर आदि मानव, मध्य मानव, उत्तर मध्य मानव, पूर्व नव मानव, एवं नव मानव सारे के सारे मिलकर भी इन अनुभूतियों की कोई सीमा निर्धारित नहीं कर पाए हैं.. ये अनुभूतियां हमेशा मानव से एक कदम आगे रही हैं.. यही यही है.. अध्यात्म की अमरता.. अध्यात्म की शाश्वतता.. दिव्यता.. चिर पुरातनता एवं चिर नवीनता।

ऐसा नहीं है कि वह दिव्य गान वेदों का मृत हो गया है। वह तो तब तक जीवित रहेगा जब तक कि मानव है.. और मानव जीवन के कई पलों में इसे सुनता है.. फिर इसकी प्यास में जिन्दा रहता है... सबसे प्रबल प्यास मानव को इस "आदि अनुभूति" की ही है।

प्रात: सायं उस प्रभु अनुगूंज के प्रथम स्वर की एक कल्पना यह है.. उस दिव्य से उद्‌भूत लहरों में झूलती.. उसमें बिलगाव की प्रथम घड़ी का (चार ऋषियों पर दिव्य अवतरण के समय का) एक चित्रण–

"तुम से विलग होकर
मैंने स्वरों में बांधा था
तुम्हारी ऋचाओं को,
गाते थे मेरी वीणा के तार
तुम्हारे ही स्तोत्र
प्रातः से गोधूलि तक,
बहते रहते थे मंत्र -निर्झर
अनुगंजित होती थी रात्रियां।
हे आदि कवि,
तुम्हारे परम ज्ञान की
अभिव्यक्ति का गौरव बन
उच्चारित होती थी मैं दिशि के पवनों में
हर सुबह उतरता था प्रथम रश्मि के साथ
मंडलाकार ऋचाओं का संगीत
अनुध्वनित होता था
दिशाओं में
सागर सरिताओं में।" [१६९]

आदि ज्ञान की व्यापकता का एक चित्रण है यह। और यह रहा है आदि तब से। आदि तब से सफर में मानव से जब "आदि तब" का परम आनंद छूट जाता है तब वह कह उठता है–

अब तक की अनंत स्तुतियों में
आंक नहीं पाई हूं मैं
कोई सांगोपांग रूप तुम्हारा
खोज नहीं पायी हूं वैसा वैदेही आवास
हे आदि देव,
तुम्हारी अन्तः सृजा, अपराजितता, आदिकन्यका मैं
वागीश्वरी कह जिसका किया था अभिनंदन
तुम्हें न जान पाने की
पराजय से अभिभूत आज
-पर्वत के इस सर्वोन्नत शिखर से
पुकारती हूं तुम्हें-
"लौटा दो वही अनंत का प्रकोष्ठ
लौटा दो हृदय की
वही विराट शून्य सेज।" [१७०]

"ये साधू ,ये सन्यासी, कितने भरे कितने खोखले"

ज्ञान भाई तेरा सहारा मेरी जिन्दगी को बहुत बड़ा है। तूने मुझे वे हाथ दिए हैं जिनकी एक उंगली उठने पर सन्यासी लोग अपने आप मेरे सामने सब कपड़े उतार देते हैं। सबसे ज्यादा कपड़े आज सन्यासी ही पहनता है। आज के साधू सन्यासी जितना घिनौना जीव मिलना बड़ा मुश्किल है। इतने घिनौने जीवों को भी कपड़ों के कारण, गलत आवरणों के कारण लोग पूजते हैं। सच लोग कितने बौने हैं? कितने अंधे हैं?

इन दिनों भिलाई में एक सन्यासिनी आई हुई हैं। उन्हें सन्यासिनी कहना मुझे अपना अपमान लग रहा हैं.. छि: ऐसे निम्न स्तरीय जीव को सन्यासिनी कहना चैतन्यता का अपमान है। यशेषणा का आवरण टूट जाने पर घोर दु:ख से अभिभूत आदमी का करूण क्रंदन मैंने देखा है। बहुत कुछ देखा है दस मिनट के लघु समय में। उस निम्न नारी का मैंने भाषण सुना परसों.. आज उससे चर्चा करने गया। तारादेवी पोपट मेरे साथ थीं।

वह कंबल ओढ़े पलंग पर लेटी थीं। मैंने नमस्ते की। प्रत्युत्तर मिला। वह उठ गईं। मैं नीचे बिछी दरी पर बैठा। कब तक यहा हैं? कृपालूदास जी कहां हैं? आदि सामान्य प्रश्नों के पश्चात मैंने पूछा– "आपके पास समय है?"

"हां बहुत समय है"– उसका उत्तर था।

"मैं कुछ चर्चा कर सकता हूं?"

"हां बहुत लोग आते रहते हैं अभी अभी तीन सज्जन गए हैं"– उसने कहां।

"मेरे कुछ प्रश्न हैं?"

"कहिए... पूछिए"

"आपने वेद पढ़े हैं? मैनें पूछा।

"हां पढ़े हैं क्यों?"

"परसों मैं आपके भाषण में गया था"

"कल नहीं आए थे"

"नहीं परसों आपने उपनिषद के श्लोक कहे थे और कहा था कि वेद कहता है"– मैनें कहा।

"उपनिषद और वेद क्या अलग अलग हैं?" उसका प्रश्न था

"हां... केवल ईशोपनिषद अंतिम तीन मंत्रो के कुछ परिवर्तन के अतिरिक्त यजुर्वेद का अंतिम अध्याय है.. बाकी उपनिषद तो वेद नहीं हैं?" मैंने कहा।

"श्रुति किसे कहते हैं?"

"व्यापक अर्थ में आप जो कहती हैं वह भी श्रुति है"

"वेद श्रुति हैं?" उसका प्रश्न था।

"वेद भी श्रुति कहे जा सकते हैं"

"वेद भी श्रुति है उपनिषद भी श्रुति है इसलिए दोनों एक हैं हम कहते हैं दोनो एक हैं.. कहां तक अलग अलग याद रखेगें? उपनिषद भी वेद हैं – आप नहीं मानते तो पम्पलेट छपवा दीजिए मेरे विरुद्ध लोगों में बंटवा दीजिए लोगों से कहिए मेरा भाषण मत सुनें.." आदि आदि कह वह बिफर उठीं। कुछ रुककर

"आप कैसे कहते हैं कि दोनों अलग हैं?"

"मैं आपको वेद उपनिषद दिखा सकता हूं.. पूरे मेरे पास हैं"

"मैंने तो नहीं देखे नहीं पढ़े हैं सब.. क्या गुरुजी महाराज झूठ करते हैं?

मेरा घर देख लीजिए.. मैं तो नहीं पढ़ती सब" उसकी बिफरन जारी थी।

"मैं शाम को आपके भाषण पूर्व आपको दिखा दूंगा" मैंने सहजत: कहा।

"शास्त्रार्थ करेगें मुझसे.. भाषण में दिखा देगें... कर लीजिए शास्त्रार्थ.. मेरे गुरुजी आएगें। हम कहते है, मानते है, जानते हैं, दोनों एक हैं"

"पर यह सत्य तो नहीं हैं न?"

"यही सत्य है.. आप जैसे सब जानते हैं। चले जाइए यहां से.. हमें नहीं कहनी चर्चा। चले आए हमारा दोष निकालने। कुछ याद भी है हमने कौन सा उपनिषद का वचन कहा था"– वे ताव में बोलीं।

"यत् प्राण: न प्रणोति येन....., केन उपनिषद का वचन है वेद का नहीं"– मैंने कहा।

"आपने मंत्र गलत कहा है एक जगह"

"मैं संस्कृत का ज्ञाता नहीं.. गलती हो सकती है। पर यह मंत्र और कथा जो आपने कही थी तेजस्वी पुरुष वाली– वह केन उपनिषद की है वेदों की नहीं"– मैंने कहां।

लगभग चीखते हुए उसने कम्बल फेक कर कहा.. आप चले जाइए इस कमरे से कोई प्रश्न तो करना नहीं है"।

"मैं प्रश्न करता हूं दूसरा आपके भाषण पर उत्तर देंगी?"

"कुछ नहीं मैं कहती हूं चले जाइए.. सब मूड़ खराब कर दिया.. ये तो मेरा कमरा है.. मेरे कमरे से बाहर जाइए"– वह चीखी.. उसका

चेहरा तमतमा उठा। मैं बैठा रहा तमाशा देखता।

"मैं तो सहज हूं आप क्यों क्रोधित हो रही हैं" मैंने कहा। वह कंबल फेक उठकर कमरे के बाहर चली गई.. घर के सब मेम्बर वहां जुट आए.. मुझे कहने लगे "वेद उपनिषद एक हैं"। मैं उनसे ठंडे स्वर में बात करता रहा। तारा कुछ हड़बड़ा सी गई इस सब से।

वह सन्यासिनी सामने के कमरे में चली गई। भड़ाम से दरवाजा बंद किया फिर खोला.. फिर आगे आईं..लाल लाल आंखे.. तमतमाते स्वर में बोलीं "मेरा कमरा.. मेरा है.. आप.. निकल जाइए।" मैं हंसा "क्रोधात भवति संमोहः .. संमोहात् स्मृति विभ्रमः .....।"

"हां.. हां.. हमारी बुद्धि नष्ट है.. आप निकल जाइए मेरे घर से।" यहां मैं थोड़े आवेग में आया। पहली बार कुछ उच्च स्वर में बोला— "यह घर आपका नहीं है.. भिलाई इस्पात संयंत्र का है.. आप इतना मत चिल्लाइए।"

"इनका पता नोट करो.. नाम लिखो.. देख लूंगी..।" उसने धमकी दी।

"लाइए कागज दीजिए मैं स्वयं लिख देता हूं।" मैंने कहा।

"आप मुझे पैसा देते हैं?" वह फिर चीखी।

"हां.. सामाजिक संस्थाओं को मैं अनुदान देता हूं कभी कदा.. उसका एक अंश इन भाषणों में भी उपयोगित होता है।" मैं फिर हंसा।

"लिखो इनका नाम पता.." कहती वह फिर अपने कमरे में घुसी धड़ाम से दरवाजा बंद किया.. खोला.. बोली— "पागलो सा आप हंस रहे हैं"। फिर दरवाजा बंद किया।

मैंने अपना नाम पता उस परिवार को लिखाया.. "लिखिए.. नाम त्रिलोकीनाथ क्षत्रिय.. डिवीजनल इन्जीनियर, कन्सट्रक्शन.. पता रण्डी, सड़क— २ सेक्टर— २।"

उसने फिर दरवाजा खोला बाहर जाकर चीखी.. "आप चले जाइए.. गेट आऊट!"

मैं फिर हंसा मैंने कहा— "चले जाऊंगा.. सामान्य स्वर में तो कहिए। आवेग रहित शांत स्वर में कहिए"।

वह फिर अंदर चली गई। मैं कुछ बाहर आया उस घर के लोगों से चर्चा करते।

वह फिर बाहर आई..बोली.. "पागलों सा हंसते हैं.. हम लड़कियों के बीच में आ जाते हैं।"

"आप लड़की हैं?" मैं हंसा जोर से (मुझे मजा आ गया) "मैं तो समझा सन्यासी हैं। बहुत खूब वाह" मेरे स्वर में वितृष्णा तथा व्यंग था।

"बद्तमीज.. पागल.." उसका चढ़ा क्रोध चीखा। मैं और जोर से हंसा ओर हंसते हंसते वापस चला आया.. तारा के साथ। तारा ने आवेग में उसके लिए कुछ अपशब्द कहे। मैंने उसे मना किया। वापस घर आया सोचता सोचता। ये छोटे छोटे बच्चे.. इन्हें लोग मसीहा मानकर पूजते हैं.. मैं दुनियां पर हंसता हूं... बस हंसता हूं कि ऐसी दुनिया में भी मैं जिन्दा हूं।

इस घिनौने जीव ने अपना नाम रखा है— "ब्रजेश्वरी ब्रजेश्वरी ब्रज—रस—रासिका सुश्री ब्रज वल्लरी जी" (भिलाई— ८.१.७७.) घर आकर मैंने लिखा—

"बौने बच्चों को भी मसीहा मान पूज रही है दुनियां।
सच इतनी दयनीय दुनियां में भी मैं हूं जिन्दा।।

"बौने मसीहों तुम गंदले हो मुझे कोई भी गम नहीं है।
मेरा दुःख तो ये है तुमने परमात्मा को भी गंदला कर दिया हैं।।

"तुम्हारी ढेर सी गालियों का बहुत शुक्रिया।
हुबहू देखा खुद को तुमने बड़ा साफ हूं मैं आइना।।

"मेरी खुशी बढ़ा रही थी तुम्हारे मुंह से निकली गालियां।
सच इसी रूप में सही तुम्हारी कुछ गंदगी बाहर तो निकाली।।

ये घिनौने जीव तुझे पहन प्रतिष्ठा कमा रहे हैं दुनिया में।
सन्यासीपन के चोले क्या तू आज भी गंदला नहीं हुआ है?

मैंने तुम्हे आदमी कहा तुम पशु हो गए।
तुम्हारे देवत्व की नीव सच कितनी खोखली है?

तुम्हारे जानवर हो जाने पर भी मैं आदमी रहा।
मुस्कराता रहा तुम्हारे क्रोध सींग और बढ़ाता रहा।।

सच की सुवास में भी हंस न सके।
तुम्हारे दुःखों का कोई भी इलाज नहीं है।।

मैं तो बस छोटा सा साधन हूं ब्रह्म का।
आपने आपको नंगा तो तुमने स्वयं हैं किया।।

इसके बाद मैं दो तीन बार उसके भाषण में गया तथा ता.२३.१.७७ को मैंने उसको खुली वार्ता का आमंत्रण दिया एक पम्पलेट के द्वारा..। पम्पलेट उनके भक्तों द्वारा उन तक भिजवा दिया.. ललित कुमार पोपट के हाथ भी पम्पलेट भिजवाया.. ललित को पम्पलेट देते

समय बड़ा कटु अनुभव हुआ उसके क्रोध का.. गालियों का। उसके निवास के निकट एक उत्सव में माइक पर लम्बा भाषण दिया उसकी बचकानी रटी रटाई मान्याताओं का खंडन करते हुए। मेरा खुली वार्ता का आमंत्रणा उसने स्वीकार न किया। यहां प्रस्तुत हैं वह वार्ता का आमंत्रण–

"खुली वार्ता के लिए आमंत्रण"

(एक गृहस्थ द्वारा सन्यासी को)

सुश्री ब्रज वल्लरी जी,

आप स्वस्थ रहें। आपके लिए खुली सार्वजनिक वार्ता का आमंत्रण प्रस्तुत है। विदुषी होने के नाते इसे स्वीकार करें। आपकी निम्नलिखित अवैदिक मान्यताओं तथा न अवैदिक मान्यताओं को वेदों के अनुकूल कहकर उनके प्रचार करने का मैं घोर विरोध करता हूं।

(१) "परमेश्वर के अनंत रूप हैं, तीन प्रमुख रूप हैं, तीनों में एक प्रमुख के तीन और रूप हैं, उन तीनों में आनंद रूप उत्कृष्ट है जो भक्ति रूपी है।" यह अज्ञान पूर्ण मान्यता है। परमेश्वर एक है, उसका स्वरूप विभिन्न नहीं केवल एक है। विभिन्नता समझने का कारण जीवात्मा का अल्पज्ञ होना है।

(२) "ईश्वर इतना कृपामय है कि यदि तुम पूर्ण शरणागत हो जाओ तो अनन्त जन्मों के अनंतानंत शुभाशुभ कर्मों से मुक्त करके अर्थात क्षमा करके भविष्य के अनंत काल के लिए योगक्षेम वहन करते हुए परमानंद प्रदान करेगा।"

उपरोक्त कथन में निम्न भ्रांतियां हैं।

(अ) परमेश्वर न्यायकारी नहीं है। (ब) शरणागत अवस्था में पापी, पुण्यात्मा, सब एक ही माने गए हैं। (स) शुभाशुभ कर्मों में बंधा व्यक्ति भी उतना ही शरणागत हो सकता है जितना एक कर्म संस्कार मुक्त योगी, फिर धर्म का महत्व ही क्या है?

(३) वेद के उदाहरण देते आपने कठ, केन आदि उपनिषदों की कथाएं तथा मंत्र कहे। क्या वेद, उपनिषद एक ही हैं?

उपरोक्त तथा अन्य अवतारवाद, भगवान का विरोधी धर्मों का अधिष्ठान होना आदि के विरुद्ध बातों पर सत्यासत्य के निर्णय हेतु सार्वजनिक खुली वार्ता हेतु आप सादर आमंत्रित हैं।

वार्ता स्थल, मध्यस्थ, समय आप निर्धारित करके मुझे सूचना दीजिए, मुझे आपका निर्णय स्वीकार होगा। मेरी शर्त केवल वार्ता को टेप–रिकार्ड किए जाने या संपूर्ण लिखे जाने की है। निवेदक,

२३.१.८८८

(त्रिलोकीनाथ क्षत्रिय)

एम.ए.(हिन्दी, दर्शन, लोक–प्रशासन), बी.ई.सिविल,
एल.एल.बी., डी.एच.बी., सत्यार्थ शास्त्री

"मानवता अपनी देवी है,
ज्ञान हमारा भैया है,
मेहनत अपनी बहन है,
हमें धरती मां की गोदी में
सत्य जीवन साथी संग,
जय विश्व जीते रहना है।"

"समाधि लेने वाली माताजी यहां रहती हैं" का बोर्ड पढ़कर मैं एक जगह रुका। पुरुषों से मिलने का समय ८ से १० बजे सांय पढ़कर लौट आया। ८ बजे अपनी श्रीमती जी के साथ गया थोड़ी देर प्रतीक्षा के बाद वे माताजी आई। मैंने नमस्ते की। "बैंठो बच्चा" उन्होंने कहा। काफी देर तक मौन रहा। उन्होंने एक सज्जन को मंत्र लिखित कागज, फूल और उसके द्वारा लाए पान में कुछ लगाकर कुछ डालकर दवा रूप में वापस किया उसके उपयोग की हिदायते दीं। सुदेशजी उनसे कुछ प्रभावित हुई।

"कुछ प्रश्न पूछ सकता हूं?" मैंने पूछा।

"ये जवाब देगें" उन्होनें अपने एक चेले की ओर संकेत किया। चेले ने मेरी ओर देखा।

"समाधि अवस्था में आदमी तन से तटस्थ रह जाता है.. क्या इस अवस्था को हमेशा स्थाई रखा जा सकता है?" मैंने प्रश्न किया।

उनके चेले कुछ देर तक प्रश्न समझने की कोशिश करते रहे फिर मुझसे बोले...

"मैं समझा नहीं"

"समाधि अवस्था में आदमी ब्रह्म से जुड़ जाता है यह जुड़न अवस्था केवल योग साधना के कुछ चरणों की समाप्ति तक ही क्यों रहती हैं? सदा क्यों नहीं रहती?" मैंने कहा।

"साधना जब करते हैं तो उपलब्धि होती है वह क्या होती है उसका विवरण कठिन है" उसने कहा... "वहां तक पहुंचना...।"

"ठहरों मैं बताती हूं.. तुम चुप रहो.. तुम्हें यह सब समझ में नहीं आएगा" माताजी ने अपने शिष्य को देखकर कहा।

"हां बच्चा तुम क्या साधना करते हो?"

"योग निद्रा, सोऽम् निद्रा और ओऽम् निद्रा। मैं कहता हूं

"अच्छा....।" उन्हें कुछ समझा कुछ नहीं। उन्होनें पूछा "गणेश क्रिया और '————' क्रिया की है कभी.. उससे बिना कुछ नहीं होने का।"

"मैं तो अध्यात्म साधनाएं करता हूं.. शारीरिक आसन कम।" मैं बोला

"कुछ अनुभूति वनुभूति हुई।" उनसे पूछा।

"हां" मैंने कहां।

"फिर तुम्हारा प्रश्न क्या है?

"यही कि उस कुछ समय की उच्च अनुभूति को हर पल कैसे स्थायी रखा जा सकता है?"

"बच्चा क्या करते हो प्लांट में?"

"डिजाईन ब्यूरो में काम करता हूं।"

"क्या काम करते हो?"

"कुछ नहीं बस काम करता हूं।"

"कल आ सकोगे तो अकेले में चर्चा होगी".. उन्होनें आसपास देख कहां।

"कल कितने बजे आऊं?"

"पांच बजे।"

"मैं साढ़े पांच बजे आऊंगा। पांच बजे मेरी छुट्टी होती है।" मैंने कहां उन्होनें स्वीकृति दी।

दूसरे दिन सवा पांच बजे मैं उनके पास पहुंचा। कुछ समय कुशल क्षेम के पश्चात उन्होनें सहजत: पूछा "हां बच्चा पूछो क्या पूछना है।"

समाधि अवस्था को स्थायी सदा के लिए कैसे रखा जा सकता है?"

"आप क्या साधना करते हैं?"

"योग निद्रा, सोऽम् निद्रा ओऽम् निद्रा।"

"कैसा अनुभव होता है?"

"दूर दूर तक अनन्तानन्त ब्रह्म है.. यहां वहां हर कहीं.. और जो कुछ बचा रहता हूं मैं.. उससे उस 'इस उस' को.. अनन्त लम्बे कदमों से नापते नापते.. अनथक नापते न अस्तित्व थकता है, न ब्रह्म नपता है। तैरता सा दौड़ता हूं दौड़ता सा तैरता हूं मैं उस अथाह ब्रह्म में..।" मैं भाव विभोर सा कहता हूं।

"बहुत बहुत अच्छा" वे गद्‌गद् हो कहती हैं। "...फिर आपका प्रश्न क्या है?"

"प्रश्न यह है कि इस अवस्था के लिए साधना ही क्यों करनी पडे? बिना साधना हरपल हरक्षण यही अवस्था क्यों न रहे?"

"देखो बच्चा.. हम पढ़े लिखे नहीं हैं.. ठेठ अंगूठा छाप हैं। हम बचपन से तीन चार से.. हमार माता पिता दान दे दिया.. नागा साधू है.. हमार भी अखाड़ा है। हम योग करते हैं.. बचपन से सीखे हैं.. तब यहां पहुंचे हैं.. तुम्हारा कहना ठीक है.. ब्रह्म तो यह सब.. शंकर की फोटो जो तुम देख रहे हो.. फूल... अगरबत्ती.. वगहरा कुछ नहीं है.. ये सब तो छोट वोट बात है.. ब्रह्म तो ग्रन्थ सम्प्रदाय से.. हिन्दू.. मुसलमान.. सिक्ख.. ईसाई से अलग है.. ये सब (समाधि लगाना लोगों से पैसे बटोरना आदि) तो हम करते हैं कि हमें आश्रम बनाना है। ये साधन तो कुछ लोगों को जो इनसे बंधे हैं उनके लिए है। हम समाधि लगाया.. खूब खूब लगाया.. पूछों इन लोगन से.. खूब कठिन साधना करना पड़ता है.. द्वौति.. नेति.. गणेश क्रिया.. तब संकल्प समाधि लगाते हैं.. ब्रह्म तो बहुत बड़ा है.. जैसा तुम बताया बच्चा..। पर उसके लिए अनुभूति लगातार करने के लिए तुम हमार साथ रहो बच्चा.. साल डेढ साल तो कुछ हो सकेगा। गृहस्थ..वृहस्थ तो उस अवस्था तक.. समाधि वमाधि तक पहुंच नहीं सकता है.. उसके लिए ब्रह्मचर्य जरूरी है।" उन्होने करीब एक सांस में कहां।

उनकी स्पष्ट स्वीकारोक्ति के कारण गृहस्थ वाली बात से सहमत न होते हुए भी मैंने उनसे आगे चर्चा नहीं की। "क्या डेढ साल से कम में नहीं हो सकेगा?" मैंने पूछा(मेरे मन में नव अनुभव की दृष्टि से तीन चार माह उनके साथ रहने का विचार था)

"नहीं बच्चा उसके लिए लम्बा समय लगेगा.. आप पहले कुछ दिन कम समय रहिए.. फिर आगे देखिए।"

"ठीक है मैं सोचूंगा, आपका पता क्या है?"

"अभी तो हम इलाहाबाद जा रहे हैं.. हमारा आखाड़ा है वहां। वहां से रायपुर टिकरापारा में असश्रम बना रहे हैं। हमारा नाम लीलाधार.. पूछ लीजिएगा...।"

"आपका बहुत बहुत धन्यवाद!" मैं चला आया नमस्ते करके।

श्री.सिंह के घर से मैं सीधा सिविक सेंटर जाता हूं। यहां श्री.गोकुल प्रसाद जैन का भाषण हो रहा है। मैं कुछ लेट हो गया हूं। भाषण समाप्ति पर प्रश्नोत्तर कार्यक्रम होता है। भाषण में उन्होंने कहा था कि समय तथा आत्मा का हमें विश्वास नहीं करना चाहिए बिलकुल ही.. इस सन्दर्भ में उन्होंने जैन धर्म से एक उद्धरण भी दिया था। मैं प्रश्न करता हूं– "आपने कहा कि समय का विश्वास नहीं करना चाहिए.. लेकिन हम जीवन में पल पल समय का विश्वास करते हैं.. एक एक साल बाद के कार्यक्रम बनाते हैं.. और ये सब कार्यक्रम पूरे होते हैं। सामान्य जीवन में हम ९९.९९ प्रतिशत हम समय का भरोसा करते हैं.. और भरोसा सच्चा ही होता है। फिर हम ०.०१ प्रतिशत बल्कि इससे

ही कम अनिश्चित्ता पर समय का भरोसा न करें तो क्या यह उचित होगा? यह मेरा पहला प्रश्न है एक प्रश्न और— आपने कहा आत्मा का भी हमको भरोसा नहीं करना चाहिए.. यह हम क्या हैं? आत्मा क्या है? आत्मा प्रबल है या हम?"

वकील साहब ने प्रश्न किया प्राचीन काल में लोग मालकौंस सुनते थे और कत्थक नाच देखते थे, खुश होते थे। आजकल लोग सस्ते फिल्मी गीत गाते हैं चा चा चा नाचते हैं और खुश होते हैं। हमें तो इस और उस संस्कृति में कोई खास अन्तर नहीं दीखता है। एक और प्रश्न भी उनसे पूछा गया था। पर प्रश्नों के उत्तर संतोषजनक नहीं थे। मेरे पहले प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा— समय का हम भरोसा करते हैं यह ठीक है। दूसरे प्रश्न के उत्तर में "आत्मा" हम की परिभाषा भेद बड़े बड़े ग्रन्थ धर्म नहीं कर पाए हैं। वकील साहब के प्रश्न का उत्तर भी उन्होंने गोलमाल दिया कि नहीं नहीं दोनों में अन्तर है। प्रश्नोत्तर से कोई सन्तुष्ट न था.. पर एक बात वे प्रश्नों का उत्तर देते समय सहज सौम्य थे। ८.९.७७

सिद्धान्त मानव के लिए होते हैं, लेकिन आज मानव मानव ही नहीं है। वह तो भैंस है जो भाषणों की बीन पर पगुराता रहता है। अन्य सम्प्रदायों ने भैंसिया समाज का निर्माण किया ही है। लेकिन मुझे दु:ख है कि आज आर्य समाज भी भैंसिया समाज हो गया है.. भेड़ समाज हो गया है। दो—तीन लघु चर्चाओं पर आर्य समाजियों की प्रतिक्रिया भी लिख दूं—

श्री.चड्ढाजी सेक्टर १ के यहो हवन के पश्चात अखिलानन्द जी का भाषण हुआ। भाषण में उन्होंने एक कथा के माध्यम से बताया कि प्राचीन भारत में ब्रह्मचारियों को यह भी पच्चीस वर्ष तक मालूम नहीं होता था कि नारी क्या है? स्त्री कैसी होती है? उसका प्रयोजन क्या है? और यह था ब्रह्मचर्य का आदर्श। भाषण पश्चात कुछ व्यक्तियों ने उनसे चर्चा प्रारम्भ की। प्रश्नोत्तर में मैंने प्रश्न किया—ब्रह्मचर्य आश्रम में जब सब विधाएं पढ़ाई जाती थीं तो सभी ग्रन्थ पढ़ाए जाते थे। और ग्रन्थों में विवाह सम्भोग नियोग संबंधि नीतियां भी हैं। इतना सब पढ़ने के बाद किसी को कैसे मालूम नहीं होगा कि नारी क्या है? उसका प्रयोजन क्या है? "वह सब भाग छोड़कर पढ़ाया जाता था" अखिलानन्द जी ने उत्तर दिया। "याने कि ग्रहस्थाश्रम वानप्रस्थाश्रम सन्यासाश्रम का पूर्ण विवरण नहीं बताया जाता था तो पच्चीस वर्ष की उम्र में अज्ञानता से गृहस्थाश्रम प्रारम्भ करते थे.. मैं तो सोचता हूं सब पढ़ाया जाना चाहिए" मैंने कहा।

"नहीं उस समय ऐसी मान्यता नहीं थी" वे बोले अन्य लोगों ने भी उनके पक्ष में तर्क दिए कि वे नारी को देखते ही नहीं थे।

"परन्तु विवाह से पूर्व लडकी का चित्र देखने का विधान है.. उससे चर्चा का भी विधान है। तो बिना कुछ जाने किस आधार पर किस हेतु के लिए चर्चा?" मैंने पूछा।

"उस समय वह बता दिया जाता था" अखिलानन्द जी अपनी मान्यता से डगमगा गए थे। लोगों नें उन्हें सम्हालने की कोशिश की कि मालूम तो होता था पर वह सूचना भर थी.. ज्ञान नहीं था।

"सूचना होने की ही बात तो मैं कह रहा हूं.. सूचना ज्ञान तो एक अलग प्रश्न है। विषयान्तर हो जाएगा। एक प्रश्न और— महर्षि दयानन्द ब्रह्मचारी थे?" मैंने पूछा।

"हां इसमें क्या शक?" अखिलानन्द जी ने कहा।

"फिर उन्होंने नियोग सम्भोग गृहस्थादि पर क्यों लिखा?" मेरा स्वर कुछ कटु था। अखिलानन्द जी चुप रहे। इन्द्रकुमार (चौहान) तथा कुछ लोगों ने जवाब दिया— पर वे रहे तो समाज में थे बहुत देर से वे सन्यासी हुए। सहारा पर कर अखिलानन्द जी ने कहा— "अट्ठाराह वर्ष की उम्र में जब वे भागे थे तो उनकी शादी होने वाली थी.. वे सब जानते थे।"

"मैं यह नहीं कह रहा जब उन्होंने यह सब लिखा तो उन्हें मालूम था कि ब्रह्मचर्य की मर्यादा क्या होती है.. वे सब ग्रन्थों का अध्ययन कर चुके थे.. फिर उन्होंने मर्यादा विरुद्ध बात क्यो लिखी?"

मेरा प्रश्न प्रश्न ही रहा.. लोग चर्चा उचित अनुचित बहस शंका नहीं आदि में उलझ गए। वहां से वापस लौटते लौटते श्रीवास्तव जी, इन्द्रकुमार, अखिलानन्द जी से इसी पर बातचीत होती रही। श्रीवास्तव जी का आरोप था मुझपर कि मैं शंका नहीं करता बहस करता हूं। अखिलानन्द जी ने कहा यह उनकी शंका थी बहस नहीं। श्रीवास्तव जी ने बातचीत में ही कटु होकर कहा संस्था की प्रतिष्ठा का सवाल है मैं आपको ऐसी चर्चा की अनुमति नहीं दे सकता। मैंने हंसकर पर कटु ही स्वर में उत्तर दिया— "आपकी अनुमति या विरोध बेकार है.. घर चड्ढा जी का था.. यज्ञ व्यक्तिगत तौर पर रखा गया था.. चड्ढा जी चर्चा के समय थे.. उनका कोई प्रतिरोध नहीं था.. चर्चा स्वामी जी से हुई. . उनका कोई प्रतिरोध नहीं.. अत: आपके प्रतिरोध अनुमति का कोई महत्व नहीं है।" यहां अखिलानन्द तथा इन्द्रकुमार के बीचबचाव से स्थिति सामान्य हुई।

महर्षि दयानन्द द्वारा स्थपित आर्य समाज की स्थिति.. मुझमें जागा दयानन्द आठ आठ आंसू रो रहा है। आर्य समाज के ये प्रधान शायद सिद्धान्त शब्द भी नहीं जानते.. मान्यता शब्द से अनभिज्ञ व्यक्ति मान्यता का महत्व क्या समझेगा? खैर रविवार का दिन घटना २९.११.७७ की है। आर्य समाज के साप्ताहिक सत्संग के पश्चात अखिलानन्द जी को भाषण देने को कहा गया। पर उन्होंने उस समय को प्रधानजी की अनुमति से शंका समाधान में परिवर्तित कर लिया। शंका समाधान में दो—तीन प्रश्नों के उत्तरों पश्चात मैंने प्रश्न किया— "पिछले वर्ष आपने एक प्रश्न के उत्तर में कहा था इस जन्म में किए गए कर्मो का फल इस जन्म में मिल ही नहीं सकता है। लेकिन गंगाप्रसाद उपाध्याय की पुस्तक 'कर्म फल सिद्धान्त' में दिया है कि कुछ कर्म तीव्र कर्म होते हैं उनका फल इसी जन्म में मिल जाता है। तो आखिर सच क्या है?

"एक सप्ताह बाद से तो आए हैं" से उन्होंने प्रारम्भ किया (मीठा उलाहना) खैर मैंने गंगाप्रसाद उपाध्याय से चर्चा की थी.. और उन्होंने भी माना था.. मेरा तो बस एक प्रश्न है कोई उत्तर दे दे तो मैं उसकी बात मान लूंगा। मेरा तो दृढ विचार है कि इस जन्म में इस जन्म

का कर्मफल नहीं मिल सकता है। एक बात बताइए एक पेड़ है.. उस पर फल लगते हैं.. उन फलों में बीज होते हैं.. बीजों में अव्यक्त पेड़ होते हैं न?" वे कुछ रुके मेरी ओर देखकर कहा "बताइए होते हैं न?"

मैं चुप रहा "कहिए होते हैं न?"

मैंने कहा "आप पहले पूरी बात कहिए फिर मैं कहूंगा।"

"अच्दा कोई मुझे बता दे कि क्या एक पेड के जीवन काल में ही वे फल बीज फिर पेड बन सकते हैं? मेरा तो चेलेंज है" उन्होंने कहा।

"आपने अपनी बात कहली?" मैंने पूछा.. उनके हां कहने पर मैंने आगे कहा– "आपके उदाहरण पर दो प्रश्न हैं एक तो यह कि वृक्ष पर लगे फल वृक्ष के कर्म के फल स्वरूप नहीं लगते हैं.. वे कर्मफल नहीं हैं.. वृक्ष स्थावर भोगयोनी है अत: स्वतन्त्र कर्म नहीं करता है।और दूसरा वृक्ष के जीवन काल में ही यदि कुछ समय के लिए आपकी बात मान ली जाए तो वृक्ष पर लगे कई बीज नूतन वृक्ष ही नहीं बनते पर नए फल देकर बीज भी बन जाते हैं?"

"आप शंका नहीं कर रहे हैं.. शास्त्रार्थ कर रहे हैं" अखिलानन्द जी ने कहा। फिर उत्तर दिया– "वृक्ष के जीवन काल में नए गर्भ में ही बीज विकसित होता है.. वृक्ष कर्म नहीं करता.. उसमें आत्मा.. आत्मा तो होता है.. क्या.. क्या था आपका दूसरा प्रश्न?" वे अपने आप से उलझ रहे थे।

"ऊसरा प्रश्न" मैं खड़ा हुआ पर यहीं आर्य समाज के प्रधान भी खड़े हुए और उन्होंने कहा–"यह समय शंका समाधान का है और जैसा स्वामी जी ने कहा आप शास्त्रार्थ कर रहे हैं। बाद में किसी समय कर लीजिएगा।"

"आपका बहुत बहुत ध्न्यवाद मैं तो चर्चा इसलिए कर रहा था कि यहां वैदिक मान्यता का प्रश्न है। गंगाप्रसाद जी उपाध्याय माने हुए आर्य विद्वान हैं.. और उनकी मान्यता का खंडन हो रहा है.. फिर भी आप नहीं चाहते तो ठीक है.. मैं तो एक दो मिनट में चला जाऊंगा. . पर वैदिक अवैदिक का प्रश्न वैसा ही रहेगा।" कहकर मैं बाहर चला आया यह कहते कि "मुझसे कोई भूल हो गई तो क्षमा चाहता हूं, बहुत बहुत धन्यवाद आपका।"

प्रात: का समय है.. मैं शशी और सुदेश जी टहलने जा रहे हैं। एक स्थल लिखा है "दो घंटे में भगवान का आह्वान किया जा सकता है समय ८ से ९ बजे।" मैं पढ़ता हूं.. हंस पड़ता हूं पढ़कर। हम आगे बढ़ते हैं शहीद स्मारक जाते हैं.. प्रात: रमणिकता पीते पीते नौका विहार कर लौटते हैं। मैं स्नान पश्चात शशी को उसके कालेज आधे रास्ते तक छोडने जाता हूं और वहां से भगवान की आह्वान की दुकान चले जाता हूं।

एक सज्जन गेहुए रंग का चस्मा लगाए आराम कुर्सी पर बैठ पेपर पढ़ रहे थे। मैं उनसे पूछता हूं– "यह आपने लिखा है?" वे हां कहते हैं अन्दर चले जाते हैं। बाहर से अन्दर गन्दगी का अम्बार दिखता है। वे एक टूटी सी पुरानी कुर्सी लाते हैं। मैं उस पर बैठता हूं वे फिर अन्दर चले जाते हैं। मैं काफी देर तक बैठा रहता हूं। वे एक कागज लाते हैं उस पर कुछ लिखते हैं। मैं उन्हें देखता हूं.. वह बुद्धू सा चेहरा... कुछ भीत सी आंखें.. चेहरे पर झुर्रियां.. बांह की मछलियां लटकी हुई.. पैरों में पुरानी चप्पल। कुछ सुधारकर वे कागज मेरी ओर बढ़ा देते हैं। मैं पढ़ता हूं.. उसमें चार कुमारियों को पूजा पर साथ ले आत्मा आदि के आह्वान संबंधि उस पूजा का विवरण है जो बचपन में अर्धपूर्ण रूप में मैं कितनी ही बार कर चुका था और आने वाली आत्मा (?) को अपने हाथों भटका भी चुका था। मेरे पढ़ने के बाद उन्होंने दो कथाएं भी (सच्ची घटनाएं) बताई। एक थी एक लड़की के बारे में कि उसने अचेतनावस्था में मेरी भतीजी होने पर भी मुझे तू कहा, तथा मांग क्या मांगता है आदि कहा। और बनारस के एक लक्ष्मीनारायण मन्दिर के साधू का परिचय बताया तथा उनकी पुस्तक का उल्लेख किया। इन्होंने जाकर वह पुस्तक खोजी पर नहीं मिली और बाद में जर्मनी के लोगों ने चार हजार रुपयों में वो खरीद ली आदि आदि।

मैंने उन्हें चेतन अवचेतन मन की कार्यप्रणाली संक्षेप में बताई। सामान्य विधि द्वारा बारह साल तक के बच्चों पर जादुई डिबिया के प्रयोगों द्वारा उनके अवचेतन की जागृति बताई। और उस लडकी के अवचेतन की जागृति पर अवचेतन भ्रमण के परिणाम द्वारा घटनाएं समझाई।

उन्होंने दूसरी घटना बताई– एक लडका था साधना करता था। एक बार उसने रामकृष्ण भगवान की आत्मा को बुलाया तो उनके चेले की आत्मा चली आई और बोली कि अभी वे दूसरे काम में लगे हुए हैं.. खाली होने पर आएंगे। और कुछ देर बाद वे चेले और रामकृष्ण आए.. उस लडके को ले गए अपने साथ.. लडके का शरीर पड़ा रहा वैसे ही.. लडके को लेकर वे काफी दूर एक चबूतरे के पास गए.. वहां चबूतरे के पीछे प्रकाश फैल रहा था.. वे उसे देखते रहे.. उसमें से एक हाथ निकला और लडके के सिर पर आ गया और वापस लौट गया। रामकृष्ण ने लडके से पूछा.. तुम्हें ओर क्या चाहिए..? लडके नें कहा यहीं मुझे सुख मिलता है मैं यहीं रहना चाहता हूं.. पर उन्होंने कहा नहीं. . और उसे वापस ले चले। रास्ते में उन्हें एक साधू मिला.. वह लडके से मिल कर खूब रोया। लडके ने उसके पांव पकड़ लिए कि तुम्हारे ही कारण मुझे भी दर्शन हो गए और चार घंटे बाद वह लडका वापस आया.. तब उसने यह सब बताया। उन्होंने बात पूरी की।

"भगवान है क्या?" मैंने पूछा।

"Light" उनका उत्तर था।

"Light प्रकाश तो एक भौतिक पदार्थ है" मैंने कहा।

"यह प्रकाश नहीं वह तो ज्योति है जो कण कण में है" वे बोले।

"हां ठीक है ब्रह्म वह ज्योति है जो हर कुछ में है। फिर यहां कुछ प्रश्न उठते हैं.. जब उस लडके को भगवान के दर्शन हुए तो वहां

वह लडका था, वे चेले थे, रामकृष्ण थे, वह दिखने वाला प्रकाश था, और भगवान का हाथ था.. अर्थात अलग अलग सीमाएं थीं। भगवान हर कुछ में व्याप्त ज्योति है। फिर वह सब कुछ में था तो अलग ज्योति भगवान नहीं हो सकती.. हाथ भगवान नहीं हो सकता। क्योंकि सर्व व्यापक ज्योति में अलग ज्योति, चबुतरा, हाथ, रामकृष्ण, चेला और वह लडका अलग अलग नहीं दिख सकते हैं"– मैंने कहा।

"तो फिर उसे वह दिखे कैसे?"– उनका प्रश्न था।

"मैंने आपको बताया न अवचेतन मन बड़ा शक्तिशाली होता है। वेद का मन्त्र है– **यज्जग्रतो..... संकल्पमस्तु।** अर्थात् यह जागृतावस्था में दूर दूर जाता है पर सुप्तावस्था में और अधिक दूर दूर जाता है। तो आपकी सामान्य क्रियाओं द्वारा उस भावुक लडके का मन अपनी भगवान विषयक कल्पनाओं को सत्य पाने लगा। उसका चेतन मन सो गया ओर अवचेतन मन ने उसे भ्रमात्मक दृष्यों में ढकेल दिया। यह न तो साधना है नतो भगवत् दर्शन। यह तो केवल कल्पना शीलता है।"

"पर उसे हाथ आदि कैसे दिखे?"

"कई चित्रों में चबूतरा और उसके पीछे प्रकाश और वहां से निकलता हाथ दिखाया जाता है। उसने वैसा ही एक चित्र देखा होगा और मन में कल्पना संजोई होगी"– मैंने कहा।

"पर रामकृष्ण तो भगवान थे" उन्होने कहा एक मौन के पश्चात।

"रामकृष्ण भगवान? किसने कहा आपसे..? पहली बात तो वे एकदेशीय थे अत: भगवान नहीं थे। आपने उनकी साधनाएं पढ़ीं हैं?"

"नहीं"

"यही तो दु:ख है.. हमें सुनी सुनाई बातों के प्रति अन्धश्रद्धा होती है। आप पढिए रामकृष्ण ने जब मीरा की साधना की तो स्त्री रूप धारण कर लिया.. अपने शिष्यों से कहा कि थोडा थोडा रज भी निकलता है। हनुमान की साधना की तो बन्दर सा हा हु करके पेडों पर चढ जाते थे.. और शिष्यो से उन्होंने कहा मेरी दुम भी निकल रही है। यह सब साधना नहीं मानसिक विकृति है, मानसिक अपाहिजता है। मीरा की साधना का अर्थ मीरा सा स्त्री शरीर होना नहीं है.. यदि यह साधना है तो हर स्त्री मीरा है.. मीरा साधना का अर्थ मारा का सा भक्तिभाव धारण करना है। हनुमान की साधना बंदर होने का प्रयास नहीं.. हर बंदर हनुमान नहीं हो जाता.. हनुमान साधना का अर्थ हनुमान का भक्तिभाव है। रामकृष्ण भी बहुत अधिक कल्पनाशील थे और भ्रमात्मक दृष्यों को साधना मानते थे"– मैंने कहा।

काफी समय मौन रहा.. वे मुझे देखते रहे.. अन्त में मुझसे बोले– फिर सत्य क्या है..? सत्य साधना क्या है? और मैं उन्हें वेदों के एक अचल.. अगमनीय.. अकम्पनीय.. कम्पनप्रदाता का विवरण भाषा के माध्यम से बताता रहा.. और यह भी बताता रहा कि कि भगवान के दर्शन इन भौतिक साधनों से नहीं होते.. दो घंटों में नहीं होते। इसके लिए तो युग युग साधना की आवश्यकता है। मैंने उन्हें कर्म संस्कार के विषय में भी बताया कि साधना से संस्कार सहज भोगनीय हो नष्ट हो जाजे हैं। वे सुनते रहे.. अन्त में मैंने पूछा– "क्या आप भगवान के दर्शन करना चाहते हैं?"

"यदि हो जाए तो अच्छा ही होगा"– दो घंटे में भगवान का आह्वान करने वाले सज्जन कह रहे थे। मैं कुछ हंसा.. फिर मैंने कहा– "मैं आपको साधना पथ बता सकता हूं उपलब्धि आपको कर्मानुसार होगी... आप साधना कीजिएगा।"

"हां अवश्य करुंगा" उन्होंने कहा।

पर क्यों कि वे नास्ता कर चुके थे, मैंने उनसे साधना नही कराई। पर अपना पता उन्हें दे दिया है उनका पता ले लिया है। मैं वापस लौटा सोचता सोचता जाने कितने कफन ओढा रखे हैं इन सम्प्रदायों ने भगवान को.. भगवान के नाम पर ये परम्पराओं रस्मों की भी लाशों को ही पूजे जा रहे हैं। ओ ओ भगवान! तुम्हें कैसे कैसे प्रकट करूं..? कैसे कैसे इन कफनों को चीरूं..?

यह गंगा का किनारा है। वही बगीचा है जहां दो वर्ष पूर्व चर्चा में हारे साधु द्वारा मुझे गंगा जी में ढकेलने का प्रयास किया गया था। मैं, सुदेशजी, अरविन्द, अश्विनी टहल रहे हैं। हर की पौढी तरफ जा रहे हैं। अरविन्द एक साधु एक साधुनी की तरफ ईगन करता है। मैं देखता हूं वे वही थे दो वर्ष पूर्व के साधु साधुनी। मैं उन्हें नमस्ते करता हूं.. वे तनिक चौंककर नमस्ते का प्रत्युत्तर देते हैं। अरविन्द अश्विनी चर्चा करने को कहते हैं। मैं कहता हूं दो वर्ष पूर्व इनसे चर्चा हो चुकी है। सुदेश जी नहीं कहती हैं.. कहती हैं वो इतनी मोटी नहीं थीं। हम आगे बढ़ जाते हैं.. साधु साधुनी रुक जाते हैं.. फिर हम उनसे एक बार मिलते हैं। मैं साधु जी से कहता हूं "कुछ धर्मचर्चा करेंगे?"

"हां हमारा काम ही यही है"– वे कहते हैं। हम उनके साथ एक ओर चले जाते हैं.. हमें बैठने को स्थान दिया जाता है। "झलने को पंखा"– वे एक दूसरे साधु से कुछ चर्चा करते हैं.. उनके चारों धाम घूम आने की.. काफी देर बाद मेरी ओर मुखातिब हो कहते हैं.. हमारी चर्चाएं कई जगह चलती हैं और एक विषय ले लेते हैं अब पुरानी चर्चा चल रही है– "आप पहले तो आए नहीं?"

"स्वामी जी आप पुरानी चर्चा जारी रखें.. मैं वहीं से सुन लूंगा"– मैं कहता हूं।

"भगवान.." वे चर्चा प्रारम्भ करते हैं "..प्रश्न उठता है.. है कि नहीं..? तो हम देखते हैं कि सूर्य चांद तारे हैं, पृथ्वी है, सूर्य का प्रकाश है। प्रकाश में हम देखते हैं हम आंखों से.. रूप को..रूप है।.. रस है जीभ से पता चलता है.. गंध है.. नासिका से पता चलता है.. स्पर्श त्वचा करती है, श्रवण कान करते है.., रूप, रस, गंध, स्पर्श, श्रवण यही है पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश.. आकाश में आवाज प्रकंपन होते हैं.. कानों से टकराते हैं.. कान सुनते हैं। आकाश है चारों ओर व्याप्त.. जल में रस है.. वे प्रसंग अप्रसंग कहते हैं भगवान के विषय में.." मैं चुप रहता हूं.. लोग सुनते हैं।

"इन पांचों से बना यह जीव है.. हम हैं जो रूप, रस, गन्धादि की अनुभूति करते हैं। हम क्यों हैं? क्या हम पहले भी थे? पूर्वजन्म

है.. देखिए न! एक बच्चा सोया है कभी हंसता है कभी रोता है.. यह सब क्यों है? पूर्वजन्म का संस्कार है। पूर्वजन्म के अच्छे कर्म याद करके हंसता है.. बुरे कर्म याद करके रोता है। क्यों.. ठीक है न?" वे पूछते हैं।

"ठीक है" कुछ व्यक्ति कहते हैं। मैं सोचता हूं चर्चा करूं या नहीं.. "तनिक इनकी अनुभूति तो देखो" एक आवाज आती है।

"मैं कह उठता हूं– "यह ठीक नहीं है"।

"क्या ठीक नहीं है?" वे स्वामी जी पूछते हैं।

"यही कि बच्चा पूर्वजन्म के कर्मों के कारण रोता हंसता है" मैं कहता हूं।

"यह आप कैसे कह सकते हैं?" उनका प्रश्न था।

"देखिए जब बच्चा गर्भ में रहता है तो मां के खून से उसका पोषण होता है। मां का खून उसके नाड़ियों में बहता है। मां कैसी खाती है.. कैसा पीती है.. क्या सोचती है.. यह सब का सब बच्चे को कई संस्कार दे देता है। इसके बाद जन्म के बाद भी वह मां का दूध पीता है। भोजन करता है और कई संस्कार पाता है। जब सोता है तो कई बार सामान्य आदमी भी अपने विचारों के अनुसार स्वप्न देखता है। हो सकता है बच्चा भूखा हो इसलिए सोते में रोता हो.. भरा पेट हो इसलिए खुश हो। यह सब भी हो सकता है अत: इस उदाहरण से पूर्वजन्म मानना तो सिद्ध नहीं होता है" मैंने कहा।

"ठीक कहा आपने" एक सज्जन ने कहा।

"पर वेद तो पूर्वजन्म के संस्कार ही कहते हैं.. वेद सही है.. आज का विज्ञान वेद को क्या पाएगा?" उन्होंने कहा।

"वेद के विज्ञान और आज के विज्ञान की तुलना करके बताइए वेद में शरीर रचना कैसी है? आज का विज्ञान जो शरीर रचना बताता है वह कहां वेद विरुद्ध है?" मैंने पूछा।

"विज्ञान तो बदलता रहता है.. वेद ही सत्य है" वे बोले।

"विज्ञान तो बदलता रहता है.. नहीं तो.. जहां तक खोज हुई है शरीर विज्ञान के विषय में बाते सब सत्य हैं.. जहां तक खोज हुई है" मैंने कहा।

"नहीं नहीं गलत है.. शरीर वरीर जो है ही नहीं कहीं वेद के अनुसार" उन्होने कहा।

"शरीर नहीं है.. पर वेद के अनुसार तो परमात्मा का अस्तित्व भी शरीर मानते सिद्ध किया गया है कि वह अव्रण है, अस्नाविर् है नस नाड़ी के बन्धन से रहित है.. नस नाड़ी से रहित अशरीर.. यह सब परमात्मा को आप क्या मानव की तुलना में सिद्ध नहीं करते हैं? परमात्मा मानव की अपेक्षा से क्यों सिद्ध किया जाए?" मैंने पूछा।

"स्वामी जी ये वही है" वह साधूनी बोली। अरविन्द सुदेश जी ने कुछ हलचल की।

"आपने कुछ कहा?" मैंने पूछा।

"नहीं नहीं.." वे स्वामीजी फिर आगे बोले– "सभी कुछ भगवान है, मैं.. आप.. पेड़ादि। वेद का ही एक मन्त्र है **ईशावास्यमिदं सर्वम्**"।

"इस मन्त्र का गलत उपयोग मत कीजिए.. यह मन्त्र जगत में परमेश्वर की व्याप्ति बताता है.. जगत को परमेश्वर नहीं.. और वेद का कोई मन्त्र नहीं कहता कि यह जगत परमेश्वर है।"

"नहीं नहीं.. यह जगत, मैं, आप, सब परमेश्वर हैं" उन्होंने कहा।

देखिए आपने हा कहा कि पंचभूत यह शरीर है.. कान सुनते हैं, आंखें देखती हैं, पर यह सरासर गलत है मर जाने पर आंखें रहते हुए भी नहीं दीखता, कान होने पर भी नहीं सुनता.. आंखें और कान जड़ हैं.. यह शरीर जड़ है। देखता कुछ अलग है इस शरीर से.. वह चेतन है.. और वह ही आत्मा है। शरीर माध्यम है। इस प्रकार दो तत्त्व हो गए.. पर आत्मा अपूर्ण है और परमात्मा पूर्ण। दोनों का स्वतन्त्र अस्तित्व है" मैंने कहा तथा केनोपनिषद का उदाहरण भी दिया।

"आत्मा परमात्मा एक है.." उन्होने कहा– "वेद भी यही कहता है।

"वेद का एक मन्त्र है **ओऽम् अयन्त....समेधय स्वाहा**। इसका अर्थ है आत्मा समिधा है परमात्मा ज्योति है आत्मा समिधा को परमात्मा अग्नि को परमात्मामय हो जलने के लिए समर्पित करना है। इस प्रकार तीन अस्तित्व सिद्ध होते हैं" मैंने कहा।

"यही अज्ञान है" स्वामी जी बोले– "वास्तव में सभी कुछ ब्रह्म है"

सभी कुछ ब्रह्म मानने पर व्यवस्था क्षणभर में टूट जाने की बात मैंने कही कि ब्रह्म ब्रह्म को खाता है, ब्रह्म ब्रह्म पर बैठा है आदि।

"वेद भी अद्वैत की घोषणा करते हैं" वे साधूनी बोलीं।

"अद्वैत अपने भ्रामक है– जिसका अर्थ है द्वैत नहीं– इसमें पहले दो मानना पड़ता है।" मैंने कहां

"यह तो अज्ञानियों को समझाने के लिए है– वास्तव में यह शब्द नहीं है।" स्वामी बोले।

"लेकिन वेद कहां अद्वैत मानता है? वेद का ही मंत्र है– **द्वा सुपर्णा...** दो पक्षी हैं एक वृक्ष है यहां भी त्रैत की पुष्टि है।"

"यह सब मन के सोचने की बात हैं"– वे स्वामी जी बोले।

"मन जड़ है वह सोच ही नहीं सकता"– मैं बोला।

"बुद्धि समझ लीजिए!"

"बुद्धि भी जड़ है।"

"फिर सोचता कौन है?"— उनका प्रश्न था।

"बुद्धि के माध्यम से जीवात्मा सोचता है"— मैंने कहा।

"यह गलत है.. जीवात्मा भी जड़ है"— वे बौखला गये थे।

"जीवात्मा चेतन, पर अल्पज्ञ है"— मैंने कहां "और बुद्धि, मन, शरीर उसके साधन है।

"सभी कुछ जड़ है.. परमात्मा भर चेतन है"— उन्होने अपना स्वयं खंडन किया।

"जड़ चेतन यदि दो हैं तो सब परमात्मा कैसे हुए?" मैंने पूछा।

"ब्रह्म और उसकी छाया"— साधुनी बोली बीच में।

"ब्रह्म सर्वव्यापक की छाया नहीं होती"— मैंने कहा।

"ब्रह्म सर्वव्यापक नहीं है"— उन साधू महात्मा के ज्ञान ने आत्माहत्या कर ली थी।

"स्वामी जी ये वही हैं जो परार साल नदी किनारे..."— साधुनी बोली

"स्वामी जी हमें कुछ समझ नहीं आ रहा है आप दूसरी चर्चा कीजिए"— एक सज्जन बोले।

"आप चुप रहिए.. चर्चा में आनंद आ रहा है.. स्वामी जी को उत्तर देने दीजिए.. एक और साधू बोले।

"ब्रह्म सर्वव्यापक नहीं यह आप कहते है"— मैंने कहा।

"हां सर्वव्यापक नहीं है"— वे जिद करके बोले।

"हां सर्वव्यापक है.. सब में व्याप्त है.. पर व्याप्य नहीं"— मैंने कहा।

"व्याप्य क्या है?" उनका प्रश्न था।

"यह जगत और बाकी सब कुछ"— मेरा उत्तर।

"यह अज्ञान है, यहीं सब फैला है"— वे बोले "हम सन्यासी हैं तो क्या बेकार हैं?"

"ज्ञान का अभाव ही अज्ञान है, अज्ञान अपने आप में स्वतंत्र रूप से कुछ नहीं है"— मैंने कहा।

"यह गलत है.. अज्ञान एक वस्तु है"— वे बोले।

"अंधकार प्रकाश के अभाव को कहते है.. प्रकाश लाने पर अपने आप मिट जाता है"— मैं कहता हूं ज्ञान न होने को अज्ञान कहते हैं।"

"नहीं ज्ञान की कमी अज्ञान है"— वे बोले।

"मरा नहीं अकड़ गया है.. कमी और अभाव क्या पर्यायवाची नहीं है?"—मैंने कहां।

"मैं सन्यासी हूं.. सब छोड़ आया हूं.. क्यों छोड़ा है मैंने सब..? मैं सच कहता हूं.."— वे अड़ गए थे।

"वेद का एक मंत्र बताइए जो कहता हैं कि घर से भाग जाओ.. गृहस्थ न बनो"— मैनें कहा।

साधुनी और साधू महाराज ने पुरुष सूक्त.. यजुर्वेद के ३१ वे अध्याय के मंत्र कहे.. मैंने कहा— "इसका अर्थ कीजिए वह संसार से भागना नहीं है ब्रह्म विवरण है।"

"वह छोड़िए स्वामी जी"— वे भक्त सज्जन बोले।

"आप चुप रहिए! स्वामी जी इनका समाधान नहीं करेंगे तो कौन करेगा?" एक साधू बोले।

"संसार त्याग से ही मुक्ति होगी"— वे स्वामी जी बोले।

"गलत.. वेद मंत्र कहता है.. विद्यां च अविद्यां च... जगत और अध्यात्म दोनों को साधन मानो— केवल भौतिक की उपासना वाले अंधकार में प्रवेश करते हैं तो केवल अध्यात्म साधने वाले गहन अंधकार में.." मैंने कहा.. "वेद आदर्श गृहस्थ जीवन बताते हैं। गृहस्थ भी ब्रह्मचारी हो सकता है।

"ये जाके देश के पच्चीस वर्ष के युवकों को बताइए!" वे असंगत बात बोले। "आपकी बुद्धि में अज्ञान है।

"बुद्धि क्या है आप जानते हैं?" मैंने पूछा।

"हां हां जानते हैं"— वे बोले।

"बताइए क्या है?" मैंने पूछा।

"बुद्धि बुद्धि.. वे लड़खड़ाए.. बुद्धि ज्ञान है"— उन्होनें उत्तर दिया।

"ज्ञान क्या है?" मैंने पूछा।

"ज्ञान.. ज्ञान ज्ञान है और क्या है" वे बोले।

"बुद्धि ज्ञान नहीं है ज्ञान प्राप्ति का साधन है.. मैं आपको बताता हूं बुद्धि क्या है" मैंने कहा.. बुद्धि.." "आप जाइए हमें नहीं सुनना है"— वे फिर अड़ गए थे। काफी देर तक मौन रहा।

"आपने पढ़ लिखा है.. आप में अनुभूति नहीं है.. तभी आप ऐसी बात करते हैं" आदि आदि वे कहते रहे। मैं चुप रहा.. (क्योंकि मैं चर्चा का विषय नहीं था)।

अंत में उनके एक भक्त ने कहा "आप विद्वान हैं मेरी एक बात का जवाब दीजिए— पहले मुर्गी हुई कि अंडा?"

"उत्तर जानना चाहते हैं?" मैंने पूछा।

"हां" उन्होनें कहां।

"अंडा.. क्योंकि अंडे में बीज रूप में अव्यक्त रूप में मुर्गी का आस्तित्व है" मैंने कहां।

"मुर्गी बिना अंडा कहां से आया?" स्वामी जी धीरे से बुड़बुड़ाए।

"चलो भाई चलें.." और मैं लौटा.. लौटते लौटते मैं बोला— "कोई भूल हुई हो तो क्षमा करेंगे।"

"नहीं बेटे नहीं.. इसमें भूल की कोई बात नहीं है!" वहां बैठे चर्चा के मध्य में चर्चा का आनंद लेने वाले साधू ने स्नेह स्वर में कहा।

.....हरिद्वार

विरागी जी का भाषण सुना.. भाषण अच्छा था.. पर सत्य नहीं था.. सुख क्षणिक होता है.. संसार के रिस्तों नातों में सुख मिलता है.. रस परमेश्वर में है.. रस में सरसता है.. सातत्य है.. परमेश्वर पाने के लिए परमेश्वर से कोई भी सांसारिक रिश्ता जोड़ लो.. सांसारिक रिश्ता जैसे मीरा ने पति रिश्ता कृष्ण से जोड़ा था.. आदि बातों के अतिरिक्त कई व्याख्याएं थी.. अभ्यास किया जाता है.. जप हो जाता है... भजन हो जाता है.. आदि। भाषण समाप्त हुआ.. मैं स्टेज के पीछे पहुंचा.. कुछ सामान्य सी बातचीत हुई.. मैंने उनसे कुछ समय पश्चात प्रश्न किया— "आपने कहा परमेश्वर से व्यक्तिगत रिस्ता जोड़ना चाहिए उससे रस की उत्पत्ति होगी तो यहां मुझे संदेह है, वह यह कि व्यक्तिगत नाता अर्थात सुख याने क्षणिक और रस याने शाश्वत.. तो क्षणीक सुख भावना से रस याने कि शाश्वत की प्राप्ति कैसे होगी?"

"बात यह हैं कि भावना चाहे सुख की होगी पर कर्म तो रस का ही होगा"— उन्होंने कहा।

"तब तो आपकी एक और बात.. और सिद्धांत का खंडन हो गया कि आपने कहा था कि बिना भावना के अच्छे कर्म भी व्यर्थ हैं.. महत्व हीन हैं चाहे वे कितने भी अच्छे क्यों न हों? मैंने कहा।

"अ.. ह..!" वे लड़खड़ाए.. "नहीं आप मेरा मतलब नहीं समझे बात यह है कि नाता जोड़ना तो एक साधन है.. सांसारिक वस्तुएं ही तो साधन हाती है।

"आपेक्षिक साधना से निरपेक्ष पाना पूर्णत: असंभव है" मैंने निर्णय दिया।

"आप भक्तिरस नहीं समझेगें.. भक्ति ज्ञान से कहीं परे है"— यह मेरी बात का उत्तर नहीं था।

"आप जिसे मीरा की भक्ति आदि कहते हैं वह मीरा की मानसिक विकृतियां थीं। भागवत पुराणों में कृष्ण की लीला के नाम पर सेक्स का घृणित विवरण है"— मैंने कटुता से कहा।

"भगवान कृष्ण की लीलाएं हम क्या समझे" वे बोले।

"कृष्ण और भगवान.." मेरा मन ठहाका मारकर हंसने को हुआ "कृष्ण केवल एक महापुरुष थे" मैंने कहा।

"वो ही तो हमनें कहा आप भक्ति की अनुभूति नहीं समझेंगे" कहकर श्री विरागी जी लेट्रिन के लिए चले गए। .. श्री विरागी जी वापस आए.. हम लोग टहलने चले गए.. उन्होनें जोर से "अंह ब्रह्मास्मि" का नारा लगाया.. मैंने उनसे चर्चा तो नहीं की लकिन कहा जरूर "सत्यानंद जी के बारे में आपका क्या ख्याल हैं?"

"मैं उसको देख लूंगा.. वो साला योग वोग तो कुछ जानता नहीं है ज्यादा बढ़ा तो देखना जनता ही उस पर थूकेगी.. उसे नंगा कर देगी"— वे सत्यानंद जी को सस्तेपन से गालियां दे रहे थे..। मैं हंस रहा था.. क्योंकि अहं ब्रह्मास्मि.. शिवोऽहम्.. अंह ब्रह्मास्मि तथा शिवोऽहम् भूलकर उसी का खंडन कर रहा था।

यह बालक नन्हा सा पांच वर्षीय.. और सन्यासी पैंतीस—चालीस वर्षीय भव्य सा.. बालक जिसे कोई नहीं जानता.. सन्यासी जिसे पूरा छत्तीसगढ़ जानता है.. बालक जो भीख मांगता है.. सन्यासी जो भीख मांगता है.. बालक जो अधिक पाने के लिए.. पेट के लिए झूठ बोलता है सन्यासी जो अधिक पाने के लिए यश के लिए झूठ बोलता है.. बालक जो धर्म नहीं जानता है सन्यासी जो गलत धर्म जानता है.. सोचता हूं मैं कौन कितना दयनीय है.. बालक उसके झूठ की ओर ध्यान दिलाने पर मुझे अविश्वासी कहता है.. सन्यासी उसके झूठ की ओर इंगन करने पर मुझे दुराग्रही कहता है.. लगता है वह सन्यासी ही अधिक दयनीय है.. बालक से। दो घटनाएं इस प्रकार हैं १५.९.६८.. मैं बाजार से आ रहा था.. रविवार का दिन.. रास्ते में एक पांच वर्षीय बालक भीख मांग रहा है.. मैं उसकी ओर चला जाता हूं कहता हूं "मुन्ने खाना खाओगे..?" वह अचकचा जाता है मेरी ओर देखता है.. मैं पुन: पूछता हूं "खाना खाओगे मुन्ने?" और उसके नन्हें कंधे थपथपाता हूं.. वह हां कहता है.. मैं उससे उसके बारे में पूछता हूं वह बताता है कि अपने पिता को ढूंढ रहा हूं। मैं उसे घर लाता हूं.. अंदर आता है कुर्सी पर बैठने को कहने पर झिझकता है.. मैं जबरन बैठा देता हूं उसे, सुदेश जी से पूछता हूं "खाना बना?" वे कहती हैं "रोटी सब्जी बन गई है.." मैं पूछता हूं उस बालक से.. "भात खाओगे रोटी?" वह भात कहता है। मैं सुदेशजी को चावल पकाने को कहता हूं.. वे कुछ झिझक के साथ जाती हैं।

"तुम्हारा नाम?" मैं उससे पूछता हूं।

"वीरन" वह फीके स्वर में कहता है फिर मुस्कुराता है।

"तुम्हारे माता पिता हैं? मैं पूछता हूं।

"पिता है मां मर गई है" वह कहता है फिर मुस्कुराता है।

"कितने भाई हो?"

"दो.. एक छोटा है.. वह बाप के पास है।"

"कहां रहते हो?" मैं पूछता हूं।

"सुपेला में कल ही आए हैं" वह कहता है।

"पहले कहां थे?" मैं पूछता हूं।

"नांदगांव में" वह मुस्कुराता हुआ कहता है।

"तुम्हारे पिता वहां क्या करते थे?"

"गाड़ी चलाते थे" वह कहता है।

"तो वो काम बंद कयों कर दिया? गाड़ी बैल बेच दिए क्या?" मैं पूछता हूं वह चुप रहता है फिर कहता है– "नहीं नहीं गाड़ी भरते थे।"

"तुम यहां से सुपेला अकेले जाओगे?" मैं पूछता हूं।

"हां रास्ता मालूम है चला जाऊंगा" वह कहता है।

"कल परसों तुमने क्या किया?"

"दूसरे सेक्टरों में मांगने गया था।"

"तुम तो कह रहे थे कल ही राजनांदगांव से आए हो" मैं पूछता हूं "वो...." वो केवल मुस्कुराहट के आवरण से झूठ को ढंक देता है।

"एक ही दिन में तुम यहां से भला सुपेला कैसे जा सकते हो? मुझसे तुमने झूठ क्यों बोला?"

वह चुपचाप मुस्कुराता है.. इसमें संदेह नहीं उसकी मुस्कान मधुर है भली लगती है।

सुदेश जी वहां आती हैं.. मैं कहता हूं.. इन्हें नमस्ते करो.. वह काफी समय पश्चात बायां हाथ उठा सलाम करता है और कहता है नमस्ते! सुदेश जी उसे दोनों हाथ जोड़कर नमस्ते करना सिखाती हैं। पूछती हैं.. "तुम भीख कैसे मांगते हो?" दो तीन बार आग्रह करने पर वह सफल नाटक करके बताता है.. "ऐ बाई.. ऐ बाई.. भूखे को मिल जाए कुछ.. ऐ दे.. दे.. बाई.. ओ इ इ।"

तब तक खाना आ जाता है मैं और वह खाते हैं.. सुदेश जी खिलाती हैं। खाते खाते वह मेरी ओर देख स्निग्ध मुस्कान से हंसता है– जिसमें परिचय है.. भोलापन है मुस्कान से हंसना उसकी अपनी विशिष्टता है।

खाने के पश्चात.. हाथ मुंह धोने के पश्चात मैं उससे दिन भर की कमाई पूछता हूं.. वह आधा किलो तो चावल बताता है सुदेशजी हंसती बोलती हैं.. "मिलता है आधा किलो तो इतने बड़े बड़े झोले क्यों लटकाए हैं?" उनका स्वर उन्मुक्त है। वे उसे आध किलो चावल का मूल्य मानों आठ आने देती हैं। मैं उससे पूछता हूं "तुम्हारे पिताजी पूछेगें तो क्या कहोगे?" "कह दूंगा.. भींग गया था.. इसलिए एक जगह रुक गया था.." वह बेझिझक स्वर में कहता है। मैं उसकी बेझिझक झूठ कल्पना पर देग रह जाता हूं। उससे कहता हूं "नहीं भाई सच बोलना चाहिए.. तुम उसे सच सच बता देना।"

"ये पैंसे उसे दोगे या नहीं?"

वह कहता है "कह दूंगा चार आने दिए थे बाबू जी ने.."

"और बाकी चार आने?"

"उसमें बिस्कुट खाऊंगा" वह कहता है।

"चलों मैं तुम्हें तुम्हारे घर छोड़ आऊं" मैं उसके साथ उतरता हूं.. वह नहीं नहीं करता है पर मैं उसके घर जाता हूं।

सुपेला सिनेमा.. अच्छी झोपड़ियां लड़की की.. फिर बांसो की.. फिर मिट्टी की.. और इन मिट्टी की झोपड़ियों के एक किनारे.. एक डबरा.. कचरा फेकने का.. जहां कचरा सड़ रहा था.. उसी के किनारे एक छोटी सी अर्ध–टूटी सी झोपड़ी के पास रुकते हैं.. वह उसका दरवाजा खोलता है अंदर चला जाता है मैं भी जाता हूं।

हर झोपड़ी सी ही यह झोपड़ी है। एक कोना.. टूटे डब्बों का पुराने कपड़ो के टुकड़ो और जुतों के ढेर ने घेर रखा था दूसरे कोने कुछ साबूत टाट के टुकड़े थे जो बिस्तर था – ऊपर एक रस्सी जिस पर पैबंद लगे कपड़े टंगे थे.. साड़ी ब्लाऊज पेंट कमीज भी थे तीसरे कोने से मध्य तक चूल्हे बने थे तीन.. तीनों पर टूटे अल्यूमिनियम और मिट्टी की हंडी आदि रखे थे और एक कोना खाली है, घर लिपा पुता साफ सुथरा है। बीरन जेब से गोलियां निकाल वहीं खेलने लगता है.. तभी एक महिला दरवाजा खोल अंदर आती है..।

"आप यहां रहती हैं?" मैं पूछता हूं?

"दाई.." बीरन कुछ कहता हूं।

"आप इसकी मां हैं?" मैं पूछता हूं.. बीरन मेरी बात कटता है– "मां ये हर पतियावत नहीं रहिस कि तैं हर मोर मां हस.. मैं एखर घर खाना खाया है.. ये पैसा दिए हैं" और वह अठन्नी मां को देता है...। मैं पांच वर्षीय बच्चे की व्यवहार बुद्धि द्वारा अपना असत्य ढांपना देखता हूं। और उन महिला से मुझे पता चलता है कि उनके पांच बच्चे हैं.. तीन वीरन से बड़े.. वह ठेकेदार के यहां ईट ढोने का काम करती है.. पति भीख मांगता है.. एक लड़का जेल में है और एक काम करता है। मैं कुछ देर रुक चला आता हूं सोचता.. वक्त कितना अधिक गलत

समझदार बना देता है नन्हे बच्चों को.. और इसलिए भविष्य में इनको कुछ भी गलत बनने के लिए अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता।

आज भाषण हुआ.. आर्य समाज में स्वामी आत्मानंद जी का.. स्वामी गणमान्य विवेकानंद आश्रम रायपुर के व्यवस्थापक.. उनके भाषण का एक भी अंश रामकृष्ण मिशन के बाहर न था.. विवेकानंद के शब्दों के आधार पर वे मानो वेद की प्रामाणिकता का निर्धारण कर रहे थे.. विवेकानंद रामकृष्ण की दुहाई देते उन्होंने भिलाई के हिसाब से कहा.. विवेकानंद देश में कल कारखानों की वृद्धि यांत्रिकता की वृद्धि चाहते चाहते थे ताकि भूखों का पेट भर सके धर्म बाद में.. और उन्होनें रामकृष्ण को वेद और भगवान कहा। केन्द्र परिधि का उदाहरण दिया नकारात्मक रूप में.. शंकराचार्य मठाधीश शृंगेरी मठ (शायद) की अर्ध सत्य कर्म संस्कार मान्यता को आधार को वेद वचन कह.. उनके खंडन पर अपने अर्ध सत्य का मंडन किया।

इस सब पर मैंने निर्णय कर लिया कि इनसे चर्चा आवश्यक है। दिन निर्धारित किया मैंने बुधवार।

उनके भाषण के पश्चात श्री जातपति का दायराहीन उन्मुक्त भाषण हुआ। जिन्होने स्पष्टत: अपने भाषण में कहा– "राम.. कृष्ण.. गौतम.. महावीर.. रामकृष्ण सभी को माध्यम मानना उचित है और इस माध्यम से विराट शक्ति तक पहुंचना हमारा इष्ट है और हिन्दू धर्म एक जीवन प्रणाली है.. स्वस्थ जीवन प्रणाली हमें इसमें राष्ट्रीय और सामाजिक चेतना का विकास करना है।" श्री जगतपति जनरल मैनेजर होते हुए यदि इतनी गहन अनुभूति रखते हैं और आत्मानंदजी सन्यासी होते संकीर्णता में कैद हैं तो मैं कैसे उन्हें संन्यासी मानूं..? वे यदि सन्यासी हैं भी तो श्री जगतपति से कम हैं।

बुधवार.. मैं श्री बी.ड़ी.सिंह.. स्वामी आत्मानंद जी से चर्चा करने गए विवेकानंद आश्रम के मध्य के मनन के ऊपर के एक कमरे की बैठक में श्री सिंघानिया– एक सेठ और सज्जन बैठे थे जब हम पहुंचे

"कैसे आए?" नमस्ते पश्चात स्वामी आत्मानंद जी का प्रश्न था।

"आपका दर्शन" करने.. श्री.सिंह ने कहा.. आत्मानंद जी हंसे– "अच्छा अच्छा.." कुछ समय इधर उधर की चर्चा होती रही.. कुछ कर्म ज्ञान पर उनकी बातों ने मोड़ लिया। उन्होंने बताया कि वे उपनिषदों पर चर्चा करते हैं। "स्वामी जी ईशावास्योपनिषद के कुछ मंत्रों पर मुझे कुछ शक हैं.. जहां विरोधाभास सा है.. अन्य.."

"अंधतम:.." स्वामी जी ने हंसते प्रश्न किया.. कइयों को होती है शंका.. और उन्होनें ज्ञान कर्म पर एक विरोधाभासी भाषण देना शुरु किया.. लंगड़े, अंधे की कथा द्वारा ज्ञान कर्म का समन्वय बताया...। फिर ईशावास्योपनिषद के पहले मंत्र पर वैसा ही भाषण दिया जो उसके सामान्य अर्थ का विस्तृतीकरण था।

"स्वामी जी.. शंकराचार्य इस मंत्र का अर्थ अद्वैत परक लगाया है पर इसमें तो तीन की प्रस्थापना है" मैंने कहा भाषण पश्चात।

"कैसे?" उन्होंने पूछा।

"एक ईश्वर जो जगत में आच्छादित है दो जो त्याग करके भोगता है तीन जिसको भोगता है।"

"तो आप त्रैतवाद जगत मानते हैं?" वे बोले।

"हां" मैंने कहा।

"त्रैतवाद में क्या क्या मानते हैं ब्रह्म जीव और प्रकृति ये तीन? वे बोले

"हां ब्रह्म जीव और प्रकृति" मैंने कहा।

"तीन मानते हैं तो ब्रह्म अनन्त कैसे होगा? क्या तीनों अनंत हैं?" उनका प्रश्न था।

"तीनों प्रवाह से अनंत हैं" मैंने कहा।

"यह हो नहीं सकता" वे अपनी धुन में बोले।

"तीनों अनादिकाल से हैं.. अनादिकाल रहेगें" मैंने प्रवाह से अनन्त का अर्थ स्पष्ट किया।

"पर अस्तित्व में तीन मानेंगे अनन्त तो वह तो असंभव है" उनका प्रश्न था।

"दो सीमित हैं प्रकृति और जीव परमात्मा अनंत है" मैंने कहा।

"सीमा होने पर ऐसा कैसे होगा?" उनका प्रश्न था।

"प्रकृति और जीव में परमात्मा हैं" मैंने कहा.. और वे परमात्मा नहीं हैं जैसे कण कण में भगवान हैं पर कण कण भगवान नहीं हैं यदि कण कण भगवान हो तो पूरी व्याख्या क्षण भर में समाप्त हो जाती। भगवान भगवान से चर्चा करता है.. भगवान भगवान खाता है..भगवान भगवान पर बैठा है.. भगवान को भगवान सांस से खींचता है.. यह सब तात्पर्य हीन बाते हैं" मैंने व्याख्या की ! वे काफी देर चुप रहे "जीवात्मा ब्रह्म नहीं हो सकता कभी भी.. वह ब्रह्म की अनुभूति कर सकता हैं" मैंने कहा।

"कैसे कर सकता है?"

"एक पथ तो योग का ही है.. यम नियम आसन प्राणायाम.. आदि का" मैंने कहा।

"प्राणायाम के बाद?"

"प्रत्याहार"

"उसके बाद?"

"ध्यान"

"उसके बाद?"

"समाधि"

"उसके बाद?"

"जीवात्मा की ब्रह्मानुभूति"

"यह ब्रह्मानुभूति क्या होती है?" उनका अगला प्रश्न था।

"जीवात्मा सुपात्र हो जाता है तो उसमें ब्रह्म की ज्योति झलकती है वह उस ज्योति से आलोकित रहता है" मैंने कहा।

"यही अद्वैत है" उन्होनें निष्कर्ष दिया अपने नहीं विवेकानंद के मत से।

"यह अद्वैत नहीं.. यहां भी जीवात्मा ब्रह्म नहीं होता.. ब्रह्म की ज्योति से प्रकाशित होता है" मैंने कहा ।

"वह कैसे?" उन्होनें पूछा।

"जैसे यह बल्ब है.. यह किसी आइने में प्रतिबिंबित होता हैं तो आइना बल्ब नहीं हो जाता है, वह आइना ही रहता है। यह केवल भौतिक उदाहरण है" मैंने कहा।

"आप दुराग्रही हैं.. हम आपको नहीं समझा सकेंगे..और जहां तक हमारे समझने की बात है हम सब समझे ही बैठे हैं आप हमें नहीं समझा सकते हैं।" यह हर साधू संन्यासी की तरह उनका अंतिम अस्त्र था जो क्रोध मिश्रित गाली था।

मैं पूर्ववत था.. इस स्थिति में मैं कई बार आ चुका हूं अत: यह मेरे लिए महत्व हीन थी। कुछ देर मौन रहा।

"तर्क से परमेश्वर समझा नहीं जा सकता.. चर्चा करना हो आपको तो विज्ञान पर से कीजिए.. हम तैयार हैं और अनुभूति पर तो चर्चा हो नहीं सकती है" उन्होंने पैंतरा बदला।

"आप क्या जाने विज्ञान ने कितनी प्रगति की है?" असंदर्भित बात कही उन्होंने अपनी इज्जत बचाने के लिए, और आगे कहा– "हम कहते हैं कि आइंस्टीन का अंनत और हमारा अनंत एक है– विज्ञान भी उसी दिशा में जा रहा है। आइंस्टीन मानते हैं कि पदार्थ को शक्ति में परिवर्तित किया जा सकता है– $E = Mc^2$" मैं कह रहा था कि वे हंसे– "आप कहां हैं अभी विज्ञान तो उसके बाद कितनी प्रगति कर गया है।

"पर आइंस्टीन का मूलभूत सिद्धांत तो यही है" मैंने कहा दृढ़तापूर्वक।

"मूलभूत तो यही है पर अभी उन्होंने आगे रिसर्च की है.. आप पढ़ के तो देखिए क्या विचित्र है... उसके हिसाब से आपकी अनुभूति संवेदन आदि सब बकवास बातें हैं.. एक अणु अणु के मध्य– (उन्होंने हाथ सबंध का इशारा किया) होता है बस! वे संवेदन आदि कुछ नहीं मानते" उन्होनें कहा।

"यह भौतिक विज्ञान का नियम हो सकता है.. लेकिन हर विज्ञान का नहीं.. चिकित्सा भी एक विज्ञान है.. मेडिकल साईस के हिसाब से वे ये संवेदन आदि सब के सब मानते हैं यहां दोनो में विरोधाभास हो गया अब किसे सत्य माना जाए? और विज्ञान कितना अपूर्ण है. . मेडिकल ही अभी तक मस्तिष्क के मात्र भूक क्षेत्र तक पहुंचा है.." मैंने कहा (पर मैं सोच रहा था यह धर्म से हटकर चर्चा है)

"आपसे हम चर्चा नहीं करना चाहते.. आप बहस करते हैं" वे बोले। काफी समयतक मौन रहा। खैर मैंने लम्बी सांस खीची फिर पूछा– "मेरे कुछ प्रश्न हैं आपके भिलाई में दिए गए भाषण पर"

"हां पूछिए" उन्होनें कहा।

"कुछ समय पूर्व आपने कहा था (चर्चा होने के पूर्व) कि आप वेदों को मान्यता देते हैं उपनिषदों को मान्यता देते हैं, आपका मत कोई सम्प्रदाय नहीं है" मैं कहकर कुछ रुका। उन्होनें सहमति में सिर हिलाया।

"पर मैंने कहा.." मेरी आवाज कटु हो गई (यह होना नहीं चाहिये था).. "उस दिन आपका भाषण केवल विवेकानंद और रामकृष्ण के बारे में था और आपने स्वामी रामकृष्ण को 'वेद' और भगवान तक कहा जो कि सरासर सीमाबद्धता है और साम्प्रदायिकता है।"

स्वामी आत्मानंद इस चोट से तिलमिला गए और आवेशित स्वर में बोले– "पर आपने मालूम है हम किसका उद्घाटन कर रहे थे? रामकृष्ण सेवासमिति का।"

"पर वहां हर तरह के व्यक्तियों को आमंत्रित किया गया था और आप तो जनता के लिए बोलते हैं.. वेद.. उपनिषद आप मानते हैं लेकिन.. आपके यहां के प्रकाशन सभी के सभी विवेकानंद और रामकृष्ण जी के बारे में हैं और उनका विवरण है.. मुझे तो आपके यहां वेदों का एक भी भाष्य नहीं मिला.. ढूंढने पर भी.."

"हमने चार पुस्तकें वेदों पर भी प्रकाशित कराई हैं?" उन्होंने उदाहरण दे मानों अपने आपका ही मजाक उड़ाया।

"और आपने उस दिन कहा कि विवेकानंद जी तथा रामकृष्ण जी भूखे भारत के लिए थे.. उन्होंने कहा हमें धर्म की नहीं कल कारखानों की आवश्यकता है.. पर दु:ख है मुझे आपके प्रकाशनों में कृषि पर या इन्जीनियरिंग पर एक भी पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है.. आपके आश्रम में रविवार.. बृहस्पतिवार और अन्य दिनों धर्म पर चर्चा होती है यंत्रों पर नहीं विज्ञान पर नहीं कृषि पर नहीं" मैंने कहा।

"हम यह क्या कर रहे हैं?" आत्मानंद जी ने कहा, "हमारे यहां होम्योपैथिक दवाखाना भी है" आदि छिछले से उत्तर मुझे मिले जो तनिक भी संतोषप्रद नहीं थे।

"हम आपको नहीं समझा सकते.. आप दुराग्रह से पीड़ित हैं" आत्मानंद जी ने पुन: गुरुगौड़गी.. भोथरा हथियार उठाया।

"कहने को तो मैं भी यही कह सकता हूं" मैंने न कहकर भी मानों कह दिया।

"एक श्लोक हैं कि एक न जानने वाला.." श्री सिंघानिया लड़खड़ाते स्वर में एक उदाहरण देने लगे आत्मानंद जी के पक्ष में।

"मैं भी जानता हूं.. मूर्ख आसानी से सही या गलत समझ सकता है.. अर्धज्ञानी नहीं समझ सकता ब्रह्मा भी नहीं समझा सकते उसे और पूर्णज्ञानी सही जल्दी समझ जाता है" मैंने कहा। यहां काफी देर का मौन रहा। इसके पश्चात कुछ परिचय आदि हुए सामान्य से, मेरे बारे में श्री.सिंह ने कुछ आवश्यकता से अधिक परिचय देना प्रारंभ ही किया था कि मैंने उन्हें टोक दिया।

इसके पश्चात.. ईसाई से पुन: परिवर्तन.. राजनीति आदि पर चर्चा होती रही जिसमें मैंने काफी कम भाग लिया। श्री आत्मानंद जी स्वयं को उसका गुप्त समर्थन बताते रहे.. श्री.सिंह द्वारा पूछे गए प्रश्न के उत्तर में। हम उठे.. एक सज्जन ने कहा "आप आर्य समाजी हैं?"

"क्षमा कीजिए आपको भ्रम है.. आर्य समाज भी आज कल एक सम्प्रदाय हो गया है। मैं हर संस्था को समान महत्व देता हूं किसी संस्था का मैं सदस्य नहीं, सदस्य बनूंगा भी नहीं" और हम चले आए।

मैं सोचता रहा.. वह नन्हा बालक बीरन उसे वक्त ने एक क्षेत्र में चतुर झूठा बना दिया है.. उसके पास कोई मान्यता नहीं है.. ये स्वामी जी.. इन्हें वक्त ने एक क्षेत्र में चतुर झूठा बना दिया है.. इनके पास गलत मान्यता है.. वह भूखेषणा से पीड़ित है.. ये.. ये स्वामी उससे भीषण निम्न एषणा लोकेषणा से पीड़ित हैं.. दोनों में क्षेत्रान्तर के अतिरिक्त कोई अतंर नहीं है। २६ .९.६८

वैदिक रहस्यानुभूति तत्विक एवं आध्यात्मिक विवेचन

प्रथम अध्याय— अध्ययन का स्वरूप :— अ. उद्देश्य, ब. वैदिक साहित्य, स. वैदिक साहित्य का मूलभूत तत्त्व, द. मूलभूत तत्त्व का विकास आगामी साहित्य में, इ. आज की स्थिति।

द्वितीय अध्याय— अ. वैदिक काल, ब. वैदिक विषय, स. वैदिक जीवन प्रणाली एवं उसके प्रभाव, द. वेद... उपनिषद.. सूत्र.. दर्शन, इ. अनुभूति, फ वैज्ञानिक अनुभूति.. ऋत का दर्शन.. ऋत से आगे ऋतज्ञ का दर्शन, ज. वैदिक दर्शन में ऋतज्ञ का विस्तार।

तृतीय अध्याय— अ. विज्ञान और अध्यात्म :— संधीभूत शक्ति— पदार्थ, संधीभूत चैतन्यता आत्मा, मानव विकल्प का रूप, सर्वकेन्द्रक, समता का उच्च स्तर छाया।

ब. अध्यात्म याने आत्म में— अधि + आत्म, मौन, अडूबापन, आंजना मांजना परिशुद्धतम में,

स. उत्तरोत्तर सीढीयां या स्तर— परिमार्जित सत्य, साम्प्रदाइकता, धर्म, दर्शन, अध्यात्म उत्तरोत्तर क्रम, सर्व चेतना का बीज, मेरा नहीं से मेरा ही, अनात्म शक्ति, आत्म शक्ति।

द. महानतम देव स्वयं— खुद को खुद की स्मृति, एषणात्रय, आप्तता की ओर।

ई. अपनत्व झरना— जीवन भाग भौतिक, आध्यात्मिक, आध्यात्मिक पुरुष, चैतन्यता सामंजस्य, महामानव, अपने आप का मूल्य स्वयं, अध्यात्म लक्षण— अनाहत संवेदन, अन्दर की ओर गति, शाश्वत गति, अध्यात्म की आत्मा— स्वाहा, अदागित श्वेत मानवता गृह, अध्यात्म पावनतम मानसिकता, योग एवं अध्यात्म।

फ. अध्यात्म शत्रु अज्ञान— स्वच्छता पवित्रता, आत्मा में आत्मा, योगी.. भोगी।

य. अप्रयास प्रेम अप्रयास कर्म— प्रज्ञा एवं प्रेम, महामानव, सर्व सत्य आत्मा, पूर्णता से आप्लावित, सर्व पहचान स्व पहचान है, चार सीढियां, सप्रयास सक्रियता, सत्यापूर्त प्रज्ञा, लघुतम इकाई, गहनतम सत्य, भावमुख, कर्मयोगी, अनाहतकर्मा, एकात्म, परम एक।

र. पूणांक मानव— शान्तात्मा :— यथार्थता, अनाध्यात्म, आत्महना, मानव का गणित सूत्र, चरम विकास का अमर स्रोत, स्वरूप स्थिति, परमावस्था, महामणी मैं, शान्तात्मा।

चतुर्थ अध्याय— अ. सागर की ओर, समाज उपवन के राक्षस, संकीर्णता के लबादे, महाधर्मवाक्य, यथावत जीना, इन्सान परीक्षा।

ब. एक ही कौम— विश्व अपनत्व, प्रकृति पुत्र, मुहब्बत का पाक तार, उम्दा मजहब, सम्प्रदाय, भीड का अन्धापन, दिशा फैलाव, सरल रैखिक पथ।

स. मानवता— बालक सत्य, शाश्वत सत्य, उदात्त भावना, चौपायापन, दोपायापन, मज्दा के अधिकारी, मानवता पैमाना।

द. सरलता— अभय, परिष्कृत बचपन, मैं का आवरण।

ई. न मम ब्रह्म शाश्वत— आदमी की अपेक्षा मुर्दे, परपीडन पाप— परहित पुण्य, मानव हित, समाज व्यक्ति, मानव मानव समानता का आधार।

फ. मानवता गृह— महापुरुषों के मजार, सहज सुलभ धर्म, आदमी, सर्वोच्च कर्तव्य, जीव सिरमौर मानव, मानवता के आंसू, दिव्य प्रेम, पिजरे तोड दे।

पंचम अध्याय— रहस्यानुभूतियां— अ. अनुभूति अभिव्यक्ति :— गूंगे का गुड़, बहु संज्ञाएं

ब. अध्यात्म गणित— गणित कसौटि, एक का भ्रामक सत्य, गणित यथार्थ विज्ञान नहीं व्यवहार विज्ञान, आध्यात्मिक एक, एकालीन शाश्वत गति, आइंस्टीन का भ्रामक सत्य, ऋत प्रज्ञित, अगतित गति।

परिशिष्ट २

अध्यात्म

प्रथम अध्याय– "छोटे छोटे घेरे"

१) हिन्दू मुसलमान आदि कौन?
२) धर्म की दुकानें
३) सीमित कुछ असीमित सर्व
४) अंध पट्टियां
५) छांह जो धूप है
६) बातों की भीड
७) महापुरुषों के लाशों के संग्रहालय

द्वितीय अध्याय– "घेरों को घेर दो उन्मुक्त हो ही जाओगे"

१) डबरों से सागर की ओर
२) औरों के लिए रो दे
३) एक ही कौम
४) मानवता
५) सरलता
६) न मम ही ब्रह्म शाश्वत है
७) मानवता गृह
८) दिव्य मानव

तृतीय अध्याय– "अध्यात्म क्या है?"

१) विज्ञान और अध्यात्म
२) अध्यात्म याने आत्म में
३) उत्तरोत्तर सीढियां
४) सबसे बढा देवता स्वयं
५) अपनत्व की धार
६) अध्यात्म शत्रु अज्ञान
७) अप्रयास प्रेम अप्रयास कर्म
८) पूर्णांक मानव शान्तात्मा

चतुर्थ अध्याय– "अध्यात्म अनुभूतियां"

१) गूंगे का गुड
२) अध्यात्म गणित
३) ऋत प्रज्ञित आत्म में
४) तुरीयातीत
५) पारस मैं जगमग है
६) अनुभूति ईगन
७) ऋचाओं का अध्यात्म गीत
८) दिव्य बिन्दु – अमृत आकाश

पंचम अध्याय– "ये साधू ये सन्यासी कितने भरे कितने खोखले"

षष्ठ अध्याय– "साधना और अनुभूतियां मेरे जीवन की"

परिशिष्ट ३

सन्दर्भ सूची

१. सौम्य योग की राह पर — दादा धर्माधिकारी।
२. समाजवाद के सर्वोदय की ओर — जयप्रकाश नारायण।
३. तब होगा सर्वोदय — विनोबा।
४. जीवन साधना के पथ पर — ग्रन्थ परिचय श्री. श्री.कुमार वन्ध्योपाध्याय स्वामी आत्मानन्द
५. राम हृदय — स्वामी रामतीर्थ।
६. इस्पात के स्वर सड़कें — अशेक शर्मा।
७. राम हृदय 'फुहार' — स्वामी रामतीर्थ।
८. वही 'धर्म ओर सदाचार'।
९. गीतांजलि — रविन्द्रनाथ ठाकुर।
१०. वही।
११. अपनी ही डायरी से।
१२. सामवेद।
१३. पश्चिमी दर्शन।
१४. एशियाई समाजवाद ८—९ अशोक मेहता।
१५. दुष्यन्त कुमार।
१६. स्त्री पुरुष सह जीवन— पृ. १२४ दादा धर्माधिकारी।
१७. महात्मा गांधी।
१८. साम्ययोग की राह पर— पृ. २२ दादा धर्माधिकारी।
१९. वही पृ. १४।
२०. होरेस कालेन दी लिबरल स्पिरिट— पृ. ४८।
२१. इस्पात के स्वर 'टूट रहा है देश' अशोक मिश्रा।
२२. पार्टिगो
२३. यजुर्वेद— ४०/३।
२४. यशायाह— १—१७, १६—१७।
२५. मत्ती ५/८—१०।
२६. कुरान शरीफ ६१—२।
२७. वही २—४४
२८. गुरुग्रन्थ साहिब विभास प्रभाति १३४९।
२९. कुरान शरीफ ७४.४।
३०. वही २.२१३।
३१. वही २१.९३।
३२. वही ८.६३।
३३. आचार्य कुल जून जुलाई ७६ पृ.३।
३४. वेद।
३५. वेद।
३६. यजुर्वेद ४०/७।
३७. कन्फ्युशियस धर्म
३८. रविषेण पद्मपुराण १४.१८६।
३९. उत्तराध्ययन ६/८।
४०. वही १९/४०।
४१. आर.व्हिटवेल सेंट फ्रांसिस ऑफ असारसी चेप्टर १३।
४२. पारसी धर्म यस्न हा ३०/९।

४३. वही ३३/१३।
४४. गीता १५.१०
४५. ताओ उपनिषद २२।
४६. गीता।
४७. भागवत।
४८. पुराण।
४९. रामायण तुलसीदास।
५०. सुत्त पिट्टक– खुद्दक निकाय– सुत्त निप्पतमेत्त सुत्त ११०।
५१. बौद्ध धर्म दण्ड वग्गो १०–१–२।
५२. ताओ उपनिषद ८१।
५३. अंधायुग– धर्मवीर भारती दूसरा अंक पृ.३६।
५४, ५५, ५६. दुष्यन्त कुमार।
५७. खान अब्दुल गफार खां– क्रान्ति युग की चिन्गारियां पृ. ११६।
५८. शेक्सपीयर– What piece of women is I know.
५९. यजुर्वेद ३६/१८०।
६०. वेद।
६१. विष्णु सहस्रनाम– विनोबा पृ.३६९।
६२. जीवन साधना के पथ पर आत्मानन्द पृ. ५।
६३. वही।
६४. परिमल– संध्या वर्णन– निराला।
६५. ग्रीक थिंकर्स– गाम्पर्ज खंड १ पृ. १६४।
६६. जीवन साधना के पथ पर आत्मानन्द पृ. १४।
६७. स्थितप्रज्ञ पुरुष के लक्षण– गीता।
६८. मां योगशक्ति का उत्थान– प्रथम भाग सत्यानन्द के दीक्षापत्र मां योगशक्ति के नाम पृ. ९८।
६९. पातंजल योग सूत्र– १/१/२।
७०. वही १/१/३।
७१. नारद भक्तिसूत्र एवं भक्ति विषयक आख्यान पृ. ५३ ले.स्वामी विवेकानन्द।
७२. विविध योग दूसरा भाग ले.साधू वेश में एक पथिक पृ. १९।
७३. वही पृ. ९०।
७४. सामवेद पावमान पर्व– १/३/१।
७५. सोम सरोवर पं.चमूपति एम.ए.।
७६. मां योगशक्ति का उत्थान– प्रथम भाग पृ. ३२।
७७. रामहृदय धर्म और सदाचार ८३ स्वामी रामतीर्थ।
७८. वही ९९।
७९. सामवेद पावमान पर्व– ४/१०।
८०. थेर गाथा २४५–६६९ गोदत्त।
८१. घाट भुलाना बाट बिनु– रजनीश पृ. २००।
८२. श्री.रामकृष्ण और श्री.मां पृ.१०९ अपूर्णानन्द।
८३. गीता।
८४. सन्यासी का गीत– विवेकानन्द।

८५. वही
८६. वही।
८७. भारतीय दर्शन—२ पृ. ६४।
८८. ईशोपनिषद— ३।
८९. हिन्दू समाज का नव निर्माण— आचार्य चतुरसेन।
९०. पातंजल योगप्रदीप पृ. २८८।
९१. ऋग्वेद—८/४४/२३।
९२. बृह. ४/४/६।
९३. कठोपनिषद १/३/१३।
९४. यजुर्वेद— ३२/१।
९५, ९६, ९७. अथर्ववेद—१३/४/३, ४, ५।
९८. योगसूत्र ३/३।
९९. यजुर्वेद— ३२/२।
१००. यजुर्वेद— ४०/५।
१०१. महावीर वाणी रजनीश पृ. १२१।
१०२. वही १२१, १२२।
१०३. वही १२६।
१०४. राजयोग स्वामी विवेकानन्द पृ. २०६।
१०५. वही २०७।
१०६. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग पृ.३३।
१०७. वही पृ. ३४।
१०८. योगशक्ति का उत्थान— प्रथम भाग।
१०९. तरुणाई के सपने सुभाषचन्द्र बसु।
११०. वही।
१११. रविन्द्रनाथ टैगोर उद्धृत अनमोल मोती।
११२. वेद।
११३. वेद।
११४. रामहृदय—१,४,६,७,८ स्वामी रामतीर्थ।
११५. मातृशक्ति ले.राधेशाम भारती अक्टूबर १९६१।
११६. आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग।
११७. अथर्ववेद १८/३/१७।
११८. ऋग्वेद ९/६७/३१।
११९. सामवेद।
१२०. रामहृदय पृ.२५९।
१२१. नवनीत जनवरी ९५, पृ.६४।
१२२. महावीर वाणी रजनीश पृ.१९५।
१२३. सौंदर्यलहरी ३६ आचार्य शंकर।
१२४. वही ३४, ३५।
१२५. महावीर वाणी रजनीश पृ.२१५।
१२६. सामवेद ५/१०/१०।
१२७. अथर्ववेद १०/९/१९।
१२८. ऋग्वेद १०/१८/२।
१२९. ऋग्वेद ३/६/१।
१३०. अथर्ववेद ८/१/४।
१३१. वही २/३/३३।
१३२. वही १८/३/१७।

१३३. ऋग्वेद ९/७०/१।
१३३क. अथर्ववेद ४/११/९।
१३३ख. यजुर्वेद ३४/५५।
१३३ग. अथर्ववेद सातवलेकर।
१३३घ. अथर्ववेद ४/११/१२।
१३४. वही १/३४/३।
१३५. ऋग्वेद १०/९०/६।
१३६. यजुर्वेद ३२/१२।
१३७. ऋग्वेद १/१६४/३९।
१३८. सामवेद पावमान पर्व १/२।
१३९. वही १/३।
१४०. वही १/१।
१४१. वही २/२।
१४२. वही १/४।
१४३. वही १/५।
१४४. वही १/६।
१४५. वही १/७।
१४६. वही १/९।
१४७. वही २/७,८।
१४८. वही ३/३।
१४९. वही ३/५।
१५०. अथर्ववेद सातवलेकर पृ. १३४।
१५१. ऋग्वेद १/११५/१।
१५२. वही ४/२३/९।
१५३. अथर्ववेद १०/८/३९।
१५४. सोम सरोवर पं चमूपति एम.ए.।
१५५. अथर्ववेद १०/८/२७।
१५६. वही ६/६१/३।
१५७. वही १०/८/१।
१५८. वही १०/८/१२।
१५९. वही १०/८/२६।
१६०. वही ४/११/३।
१६१. वही १३/१/६।
१६२. वही १३/४/१२,१३।
१६३. वही ६/१/११।
१६४. वही १०/८/८।
१६५. वही १०/८/१।
१६६. वही १०/८/२४।
१६७. यजुर्वेद ३/११।
१६८. वही १७/१४।
१६९. मैं तट पर हूं— अमृता भारती पृ.४३।
१७०. वही पृ. ४४।